हिन्दी

[illegible]

सम्पादक

[illegible]

[illegible]

और

[illegible]

[illegible]

ग० कृ० गुर्जर द्वारा
श्रीलक्ष्मीनारायण प्रेस, काशी में मुद्रित ।

१६१२ में पढ़ा।

साहित्य-लता गुच्छ

पहला गुच्छ

पहला पाठ

एक ग्यारह बरस की लड़की अपने घर के पास की फुलवारी में खड़ी हुई किसी की बाट देख रही है। सूरज डूबने पर है, बादल में लाली छाई हुई है, बयार जी को ठंढा करती हुई धीरे धीरे चल रही है। थोड़ी बेर में सूरज डूबा, कुछ भुट पुटा सा हो गया, फुलवारी की एक ओर से कोई उसी ओर दीख पड़ा, जिस ओर वह लड़की खड़ी थी। कुछ बेर में वह आकर उस लड़की के पास खड़ा हो गया। लड़की ने देख कर कहा, देवनन्दन अब तक कहाँ थे? मैं बहुत बेर से यहाँ खड़ी तुमको अगोर रही हूँ।

देवनन्दन चौदह पंदरह बरस का लड़का है, उस के सुडौल गोर मुखड़े, अच्छे हाथ पाँव, छरहरी डील, ऊँचे और चौड़े माथे, लम्बी बाँहें और जी लुभानेवाली बड़ी बड़ी आँखों के देखने से जान पड़ता है, जयंत सरग छोड़ कर धरती पर उतरा है। यह लड़का उसी गाँव में रहता है जहाँ वह लड़की रहती है, छोटेपन

से ही दोनों दोनों को चाहते आये हैं। देवनन्दन तीसरे चौथे जब छुट्टी पाता, इस लड़की से आकर मिलता। यह लड़की भी बड़े चाव से उससे मिलती और अपनी मीठी मीठी बातों से उस के जी को लुभाती। लड़की जानती थी, आज देवनन्दन आवेगा, इसी से पहले से उसकी बाट देख रही थी। वह आया भी, पर कुछ अबेर करके, इसी लिये लड़की ने उससे पूछा, देवनन्दन! अब तक तुम कहाँ थे?

उसकी बातों को सुनकर देवनन्दन ने पहले प्यासी आँखों से उसको देखा, पीछे कहा,—

"देवबाला! क्या मैं तुमको भूल सकता हूँ, पर क्या करूँ, आज गुरु जी ने छुट्टी सूरज डूबने पर की, इसी से यहाँ आने में कुछ अबेर हो गई, क्या मैं जो थोड़ी बेर और न आता, तो तू यहाँ से चली जाती?"

"हाँ भाई! क्या करती, अँधेरा होने पर यहाँ ठहर तो नहीं सकती, मा जो कुढ़ने लगती हैं।"

देवनन्दन। तो फिर हम से तुम से आज भेंट कैसे होती?

दे० बा०। कैसे होती, इसी से तो कहती हूँ, तुम जैसे पहले मेरे घर आया करते थे, उसी भाँति अब भी आया करो। मा भी एक दिन कहती थीं, बहुत दिन हुआ देवनन्दन को मैंने नहीं देखा।

दे० न०। तुम्हारे घर आने में मुझे कौन अटक है, पर देखो यही दिन पढ़ने लिखने के हैं, जो इधर उधर घूम फिर कर इन को बिता दूंगा, तो फिर पढ़ना लिखना कैसे आवेगा?

देवबाला ने रूठ कर कहा, क्या हमारे घर आना इधर उधर

चूमना है ? हमारे घर घड़ी आध घड़ी के लिये आओगे, तो क्या इसी में तुम्हारा पढ़ना लिखना न हो सकेगा ?

देवनन्दन ने हँस कर कहा, अच्छा, अब मैं फिर तुम्हारे घर कभी कभी आया करूँगा। आँचल के नीचे क्या छिपाये हो, देवबाला ?

दे० बा०। क्या देखोगे ?

दे० न०। हाँ, देखूँ, क्या है ?

देवबाला ने आँचल हटाकर दिखलाया।

देवनन्दन ने देखा, फूलों से बनी हुई एक बहुत ही अच्छी माला है।

देवनन्दन ने पूछा—"यह माला तुम ने क्यों बनाई है, देवबाला ?"

दे० बा०। बतलाओ, देखें।

दे० न०। हम कैसे बतलावें, हम तुम्हारे जी की बातें कैसे जान सकेंगे ?

दे० बा०। क्या तुम हमारे जी की बात नहीं जानते ? जो नहीं जानते तो हम से मिलने के लिये यहाँ कैसे आया करते हो ?

देवनन्दन ने देखा, इन बातों के कहते कहते लाज से उसकी आँख नीची हो गई। गाल की लाली कुछ और गहरी हो गई, जिससे उसका आप ही सुहावना मुखड़ा और भला दिखलाई देने लगा।

देवनन्दन ने कहा—हाँ, यह तो जानते हैं, तुम हमको प्यार करती हो, हमको देख कर फूली नहीं समाती हो, और इसीलिये

हम तुम से मिलने के लिये बड़े चाव से आते हैं। पर माला की बात तो निपट नई है, हम इसको भला कैसे बता सकते हैं ?

देवबाला ने कहा—क्या जिसको कोई प्यार करता है, कुछ अच्छा मिलने पर वह उसको उसे देना नहीं चाहता ?

दे० न०। क्या यह माला तुमको यहीं मिली है ?

दे० बा०। नहीं, माला नहीं, फूल मिला है, माला मैंने बनाई है।

दे० न०। तुम ने मेरे लिये इतना कुछ किया है, अच्छा लाओ, देखें ?

दे० बा०। क्या मेरे हाथ में तुम नहीं देख सकते हो ? पहनो तो दूँ।

दे० न०। अच्छा, दो, पहनूंगा।

देवबाला ने धीरे धीरे अपने बड़ के नये पत्ते से हाथों को बढ़ाकर वह फूल की माला देवनन्दन के हाथों में दी। देवनन्दन ने प्यार के साथ अपने हाथों से उस माला को लेकर गले में पहन लिया।

देवबाला ने देखकर कहा—देववन्दन ! तुम्हारे गले में यह माला बहुत ही भली लगती है, अब जब जब तुम आओगे, मैं तुमको एक माला बनाकर दिया करूँगी।

देवनन्दन ने बहुत ही प्यार के साथ उसकी इन बातों को सुना। इसी बीच अँधेरा होने लगा। देवबाला ने कहा, अब अँधेरा हुआ जाता है, मैं यहाँ ठहर नहीं सकती।

देवनन्दन ने कहा—तो अच्छा, तुम जाओ, अब मैं भी जाता हूँ।

यह सुनकर फुलवारी की एक ओर से धीरे धीरे देवबाला घर चली गई। पीछे देवनन्दन भी कुछ सोचते फुलवारी से बाहर हुआ।

दूसरा पाठ

आधी रात का समय, बड़ी अँधियाली रात, सब ओर सन्नाटा, इस पर बादलों का घेरघार पसारने पर हाथ भी नहीं सूझता। किसी पेड़ का एक पत्ता तक न हिलता। काले काले बादल चुपचाप पूरब से पच्छिम को जा रहे थे। बयार दबे पाँवों उन्हीं का पीछा किये बहुत ही धीरे धीरे चलती थी। और कहीं कोई आता जाता न था, पखेरू पंख तक हिलाते न थे। सब साँस खींचे, चुप साधे, डरावनी रात के सन्नाटे को और डरावना बना रहे थे। पर तनक थिर होकर सुनने से ऐसे सुनसान और सन्नाटे में भी किसी की दुख भरी रुलाई सुनाई पड़ती है और इसी रुलाई को सुन कर ऐसी कठिन बेला में भी एक मानुख कान उठाये लम्बी डगों उसी ओर जा रहा है।

धीरे धीरे काले बादल और काले हुये। अँधियाला और गहरा हुई, बिजली कौंधने लगी, धीमी धीमी गरज होने लगी, सन् सन् बयार चलने लगी। पहले नन्हीं नन्हीं बूँदें पड़ीं, पीछे बड़ी बड़ी बूँदों से झिप् झिप् पानी बरसने लगा।

बापुरे बटोही पर बड़ी कड़ी बीती, अब वह किधर जावे, जिस रुलाई के सहारे वह आगे बढ़ रहा था, वह अब बहुत जो

लगाने पर भी सुन नहीं पड़ती थी, बयार की सनसनाहट, बादलों की गड़गड़ाहट, पानी पड़ने की धूम में, उसका सुनना उसके बस की बात न थी। पानी पड़ते पड़ते, जानेवाले के सब कपड़े भींग गयें, देह ठंढी पड़ गई, बयार के झोकों से कँपकँपी ने भी उसमें घर किया, ओलती की भाँत माथे से पानी गिर रहा था, आँख फाड़ फाड़ कर देखने पर भी कहीं कुछ सूझता न था। पर इन बातों की ओर उसका मन भूल कर भी नहीं जाता है, उसको सुरत लग रही है तो इसी की, कैसे उस रुलाई को सुनूँ, कैसे उस ठौर तक पहुँचूँ। पर यह बात उसके हाथ से जाती रही, वह जितना जतन करने लगा, उतना ही पीछे पड़ने लगा तौभी घबराया नहीं, उसी कठिन अँधियाली में, उसी कठोर बरखा में आगे बढ़ता गया। किधर जाता है, कहाँ जाता है, वह यह समझ तक नहीं सकता है, पर उसका जी उससे यही कह रहा है, अब ले लिया है, थोड़े कड़े और हो, जहाँ जाना चाहते हो, वहीं पहुँच जाते हो।

महीना असाढ़ का था, थोड़ी बेर के लिये ही यह सब धूमधाम थी। देखते ही देखते अकास का काया पलट हो गया, पानी रुक गया, बयार धीमी हुई, बादल एक एक करके जाते रहे, तारे निकले, पूरब ओर चाँद भी निकलता दिखलाई पड़ा, कुछ ही बेर में चाँदनी भी निकली। अब उस जानेवाले के जी में जी आया, कुछ धीरज भी हुआ। गीले कपड़े उसने देह से उतारे, उनको भलीभाँति गारा, देह को पोंछा, पीछे उन्हीं कपड़ों को पहन लिया। कान लगा कर सुना तो वह दुख भरी रुलाई भी सुन पड़ी, पर अब यह बहुत पास सुन पड़ती थी। वह फिर आगे

बढ़ने लगा, पर ज्यों ज्यों आगे बढ़ता था, कलेजा उसका टुकड़े टुकड़े हुआ जाता था, रुलाई सही नहीं जाती थी। घबरा गया, पर तो भी एक परग पीछे न हटा, थोड़ी बेर में वहाँ जा पहुँचा।

देखा धरती पर पड़ी हुई एक सोरह बरस की तिरिया फूट फूट कर रो रही है। सब कपड़े उसके भींग गये हैं, कीचड़ से देह भर गई है, पर वह उसी भाँति कीचड़ में लोट रही है, उसी भाँति बिलख बिलख कर रो रही है, आँखें मुँदी हैं, मूँ पर बाल बिखरे हुए हैं, उनसे मोती की भाँत पानी की बूँदें टपक रही हैं। जानेवाला, कुछ घड़ी चुपचाप खड़ा रहा, उसकी दशा देखकर आँसू टपकाता रहा। पीछे उससे न रहा गया, बोला—"तुम कौन हो? क्यों इतना बिलख बिलख कर कीच में पड़ी रो रही हो? क्या तुमारा दुख मैं सुन सकता हूँ? सुनने पर इस दुख के हाथ से तुमको छुड़ाने के लिये जतन करूँगा।"

तिरिया कुछ न बोली, उसी भाँत बिलख बिलख कर आँसू बहाती रही, उसी भाँत अपनी पुकार से पत्थर के कलेजे को पिघलाती रही। और उसी भाँत तड़प कर कीचड़ पानी में लोटती रही।

जानेवाले ने कड़ी बोल से कुछ और पास जाकर कहा, "मा! तुमारा दुख देखा नहीं जाता, कलेजा टूट रहा है, आँखों से चिनगारियाँ निकल रही हैं, धीरज हाथ से जाता रहा, मुझ बापुरे पर दया करो, आँखें खोलो। कहो कौन सा ऐसा दुख तुम पर पड़ा है, जो तुम इतना बिलख रही हो? जग में देह से बढ़-कर कुछ प्यारा नहीं है, पर तुम्हारा दुख छुड़ाने में मेरी देह भी जाती रहेगी, तो मैं सह लूँगा।"

अब की बार इसकी बोल उसके कानों में पड़ी, उसने अपनी आँखों को खोला, बोली, "हमारा दुख ऐसा नहीं जो उसको कोई छुड़ा सके, राम जिसको दुख देते हैं, उसके लिये मानुख क्या कर सकता है, तुम क्यों हमारे दुख से दुखिया बनते हो, जहाँ जाते हो जाओ, हमारे भाग में यही लिखा है, जब तक जीयेंगी, इसी भाँत कलेजा कूटती रहेंगी"।

उसने कहा, "कोई दुख ऐसा नहीं है जो छूट न सके, राम किसी को दुख नहीं देते, उन्होंने कठिन से कठिन दुख के लिये भी जतन बनाया है; जतन करने से सब कुछ हो सकता है"।

वह बोली, " न सताओ, हमें जी भर कर रोने दो, हमारा दुख इसी से हलका होता है, दूसरा कोई उपाय हमारे लिये नहीं है, हमारे कलेजे का घाव पूरा नहीं हो सकता।"

उसकी इन बातों से जानेवाले की आँखों में पानी आता था, उसने आँसू पोंछ कर कहा, "मैंने तुम को मा कहा है, फिर कहता हूँ, मा! जैसे होगा तुमारा दुख छुड़ाऊँगा, नहीं तो इस चार दिन के जीने से हाथ उठाऊंगा, तुमारे सामने यह टेक करता हूँ, साँस रहते इस टेक को निबाहूँगा नहीं तो फूस की आग में जल मरूँगा"।

वह तिरिया इस को बातें सुन कर भौचक बन गई, बोली, "तुम कौन हो बाबा! बिना समझे क्यों इतना हठ करते हो? अपना जी सब को प्यारा होता है, दूसरे के लिये अपने जी पर जोखों क्यों उठाओगे?"

वह बोले "हम कोई होवें, पर विपत में पड़े को उबारना ही

हमारा धरम है, इस माटी के पुतले के लिये इस से अच्छा कोई दूसरा काम नहीं हो सकता"।

यह सुन कर वह और अचरज में आई, बोली, "जो ऐसा ही है तो आओ, हमारे पीछे आओ, पर जी कड़ा रखना, देखो मुझ दुखिया को और दुखिया न बनाना"।

यह कह कर वह उठी और फटे, मैले, कपड़ों में अपनी देह को छिपाकर एक ओर चली, जानेवाला भी उसी के पीछे उसी ओर चला गया।

तीसरा पाठ

एक बहुत ही बड़ा टूटा, फूटा, गिरा पड़ा घर है, उस के पास दो जन घूम रहे हैं, एक वही बटोही, और दूसरी वही दुख से बावली बनी तिरिया। उन के देखने से जान पड़ता है, वह दोनों जैसे कुछ खोज रहे हैं। थोड़ी बेर में उस दुखी तिरिया ने कहा—मेरा जी ठिकाने नहीं है, झूठे ही मैं इधर उधर सिर मार रही हूँ, देखो दुआरा यही है, इस को खोलो। बटोही ने उस को खोला, दोनों भीतर गये। भीतर जाकर बटोही ने देखा एक अधगिरे घर में एक छोटी सी चारपाई बिछी हुई है, उस पर चार बरस का एक फूल सा लड़का लेटाया हुआ है। लड़का पहले बहुत सुन्दर रहा होगा, पर अब सूख कर काँटा हो गया है, अपने आप उठ तक नहीं सकता है। उस घड़ी उस को साँसें चल रही थीं और वह अधमरा सा हो रहा था। उस को देख

कर वह तिरिया फिर फूट फूट कर रोने लगी। बटोही ने कहा— ठहरो, रोओ मत, मैं अभी इस को देख कर सब कुछ बतला देता हूँ, जहाँ तक मैं समझता हूँ यह बच जावेगा। इस के पीछे उस ने अपनी झोली में से कोई औषध निकाला, लड़के के सिर और छाती पर मला, फिर उस के हाथ पाँव को टटोल कर कहा, यह लड़का अभी अच्छा हुआ जाता है, घबराओ मत, इस को और कोई रोग नहीं जान पड़ता, मैं सोच रहा हूँ भूख से इस की ऐसी दसा हो रही है। यह कह कर उस ने फिर कोई औषध निकाल कर लड़के को पिलाया, जिस से साँसों का चलना रुक गया और लड़का करवट ले कर सो रहा।

लड़के को कुछ अच्छा दख कर उस तिरिया को धीरज हुआ, वह अब कुछ सम्हली। उस का जी भी कछ ठिकाने हुआ, इस लिये वह बटोही की ओर अचरज के साथ देखने लगी। बोली, आप कोई देवता हैं, नहीं तो मुझ ऐसी अभागिनी को इस धरती पर सहारा देनेवाला कौन है, चार बरस हुआ पति परदेस चला गया। आज तक न जान पड़ा, वह कहाँ हैं, क्या करते हैं, कैसे उन का दिन बीतता है, राम उन को सुख ही में रक्खें, पर यह भी नहीं जाना जाता, वह सुख में हैं, न जाने दुख में। खाने पीने का ठिकाना तो बरसों से नहीं है। पर रहने का ठिकाना यही एक घर है, वह भी दिन दिन गिर रहा है। समझती हूँ इस बरस की बरसात में यह न बचेगा। सब ओर से निरास तो थी ही, यही एक लड़का मुझ अभागिनी का सहारा है, आज उस की भी बुरी दशा देख कर मैं आपे में न रही थी, जी बावला हो गया था। आधी रात को, इस को अकेले घर में छोड़ कर वैद

के यहाँ भागी जाती थी, बीच ही में मेह आया, तब भी बढ़ती गई, पर अचानक फिसल कर ऐसी गिरी, जिस से कुछ घड़ी जहाँ की तहाँ पड़ी रह गई। डोल हिल भी न सकी। पर जान पड़ता है भगवान की मुझ पर कुछ दया हुई, जो उन्हों ने उस घड़ी आप को मेरी भलाई करने के लिये वहाँ भेजा। आप कोई देवता हैं, मेरा मन कहता है आप कोई देवता हैं, आप ने मेरे लड़के का जी बचाया। जो लड़का मुझ निधनी का धन, मुझ कंगाल की पूंजी, मुझ दुखिया का सहारा है, उसका जी बचाया। यह काम देवता छोड़ मानुख का नहीं हो सकता। मैं समझती हूँ बिपत पड़ने पर किसी को सहारा देना मानुख का काम नहीं है।

इस दुखिया की इन बातों से बटोही का कलेजा मुँह को आ रहा था, आँख से टप टप आँसू गिर रहे थे, मन ही मन वह मुरझा रहा था, बोला, बिपत पड़ने पर किसी को सहारा देना ही मानुख का काम है, जो दुखियों के दुख को नहीं जानता, पराई पीर से जिसका कलेजा नहीं कसकता, दुख में पड़े को जो नहीं उबारता, भूखों कंगालों पर जो नहीं पसीजता, वह मानुख नहीं पिसाच है। मैं देवता नहीं, एक छोटा मानुख हूँ, जिन ओषधियों का गुन धरती पर सब जानता है, उसी के सहारे से इस घड़ी तुम्हारे लड़के का मैं कुछ भला कर सका हूँ, मेरी इसमें कोई करतूत नहीं है। इतना कह कर वह थोड़ी बेर चुप रहा, फिर बोला, तुमको दुख न हो, मुझसे कहने में कोई अटक न हो, तो मैं तुमसे कुछ पूछना चाहता हूँ।

अब तिरिया का जी बहुत ठिकाने हो गया था, पर न जाने क्यों वह अनमनी हो रही थी। एक एक करके कई बार उसने

बटोही को देखा, उसकी बातों को सुना, उसकी बोली को परखा, और यही सब बातें ऐसी हुई हैं, जिससे वह अनमनी हो गई है। पर अनमनी होने पर भी उसने बटोही की सब बातें सुनीं और कहा, आप कुछ कहें पर मैं आपको देवता ही जानती हूँ, आप जो चाहें पूछें, मैं सब कहूँगी, मुझको कोई दुख न होगा। बिपत में पड़े हुये को उबारना ही जो अपना धरम समझता है, उससे अपनी बिथा कहने में किसको अटक होगी। बटोही ने कहा, मैंने आज तक तुमारे ऐसी दुखिया नारी आँखों नहीं देखी, तुम इतना क्यों दुखी हो, क्यों तुमारा घर इतना गिरा पड़ा है, क्यों तुमारे पास पहनने को कपड़ा नहीं है, खाने को नाज नहीं है, पानी पीने के लिये पास लोटा तक नहीं है? पति जब से परदेश गया, क्या तब से कोई चीठी भी तुमारे पास नहीं आई?

वह बोली, क्या कहूँ, इन सब बातों की सुरत होने से मेरा जी फिर बावला बन गया, फिर मैं पहले की भाँत दुखिया बन गई, कलेजा फटता है, मुँह से बात भी नहीं निकलती, पर कहूँगी। आपसे कह कर ही मैं अपने कलेजे के बोझ को हलका करूँगी। यह कह कर उसने एक ऊँची साँस भरी।

बटोही ने कहा—मैं समझता हूँ, तुमको अपनी पिछली बातों के कहने में बड़ा दुख होता है। ऐसी दशा में मैं भी उसको सुनना न चाहता, पर इसी लिये सुनना चाहता हूँ, क्या जानें मैं कोई ऐसा जतन कर सकूँ जिससे तुमारा दुख घटे। उसने फिर एक लम्बी साँस ली और कहा, मेरा ब्याह हुये पाँच बरस हुआ, मैं ऐसी अभागिनी हूँ, जो ब्याह के छही महीने पीछे मेरे ससुर मर गये, घर का सब काम काज वही करते थे, उन्हीं की कमाई

का हम लोगों को सहारा था, उनके मरते ही हम लोगों के दुख का पार न रहा। पती, नारी का देवता है, वह कैसा ही क्यों न हो, पर तिरिया उसको अजोग और बुरा नहीं कह सकती, मैं भी अपने पती को बुरा नहीं कहती, और न वह बुरे हैं, पर हम लोगों के भाग की खुटाई से ऐसा संजोग हुआ, जिससे मेरे ससुर के मरने के पाँच ही छः महीने पीछे जो दस पाँच बीघा खेत था, वह बंधक पड़ गया, घर में जो दस पाँच मन नाज था, वह सब उठ गया और दस पाँच थान गहने जो मेरी देह पर थे वह सब बिक गये। दिन बड़ी कठिनाई के साथ बीतने लगे, भूख बुरी होती है, जब कोई ब्योंत न रहा, तो घर की कड़ी और किवाड़ी तक बेंच दी गई, पर ऐसे कितने दिन चल सकता है। अब उनको यह धुन समाई, मैं पूरब कमाने जाऊँगा। यह सुन कर मैं बहुत रोई, उनसे कहा, सब कुछ तो गया, अब आप भी आँखों के ओझल होंगे तो मैं कैसे जीऊँगी। बहुत कहने सुनने पर उन्होंने किसी भाँत मेरी बात मानी, पर बिपत के दिन टालने से नहीं टलते, इन्हीं दिनों इस लड़के का जनम हुआ। एक दिन मेरी सास ने न जाने क्या उनसे लाने को कहा, पर वह कहाँ से लाते पास तो कुछ था ही नहीं। इस पर वह कुछ झुँझलाईं। यह बात उनको बहुत बुरी लगी। मैं उनसे मिल नहीं सकती थी, जो कुछ समझाती बुझाती। इस लिये दूसरे दिन मैंने सुना वह कमाने पूरब चले गये, मेरा भाग फूटा, मैं रोते रोते बावली बन गई, अब तक रोती हूँ, पर कोई आँसू का पोछनेवाला नहीं है, यह कर वह चिल्ला उठी और ढाढ़ मार कर रोने लगी।

बटोही के आँख से भी आँसू बह रहा था, हिचकी लग रही

थी, पर उस ने अपने को सम्हाला, और उस तिरिया को बहुत समझाया; समझाने से उसको भी बोध हुआ। वह फिर कहने लगी—आप समझते होंगे, मुझ को इन बातों के कहने से दुख होता है, और इसी से मैं रो उठती हूँ, पर नहीं रोने ही से मेरा भला होता है, जो मैं रोती न, बावली हो जाती। पती का दुख भूली न थी, सास ने भी साथ छोड़ा। उनका कलेजा पती के मरने से चूर चूर तो था ही, बेटे का बिछोह फिर वह कैसे सहतीं, उन के पूरब चले जाने के बीस ही दिन पीछे वह भी मर गईं, मैं इस धरती पर दुख भोगने के लिये अकेली रह गई, न जाने मेरे प्रान कैसे हैं जो अब भी नहीं निकलते। जब मैं सब भाँत निरास हुई, खाने पीने का कुछ ठिकाना न रहा, सूत कात कर दिन बिताने लगी। बड़े घर की बहू बेटी ठहरी, क्या करती, किसी के घर जा कर काम काज करने से बड़ों के नाम में बट्टा लगता, भीख मांग नहीं सकती, कौड़ी पास नहीं जो दूसरा कोई काम करती, फिर सूत कात कर दिन बिताने छोड़ मेरे पास कौन उपाय था। इस सूत के बेचने और रूई मोल लाने के लिये मैं ने एक टहलुनी रक्खी थी। इस टहलुनी ने मेरे साथ जो किया उस को मैं नहीं कह सकती। नारी हूँ, लाज की बात कैसे मुंह पर ला सकती हूँ, पर हाय ! क्या इस धरती पर बच कर चलनेवाली ही को ठोकर लगती है ! क्या पाप करनेवाले सभी बुरे कामों को कर सकते हैं, उन को दुखियाओं के ऊपर भी दया नहीं आती !!! क्या कहूँ, राम ऐसों का मुँह न दिखावें। जब मैं ने देखा यह टहलुनी रहेगी तो मुझ को अपना धरम निबाहने में बड़ी कठिनाई होगी, तो मैं ने उसको अपने यहाँ से निकाल दिया।

पर ऐसा कर के मैं बड़ी झंझट में पड़ी, अब कौन सूत बेंचे, कौन रूई लावे, कौन मेरे पैसों का नाज ला दे, कौन मेरे दूसरे कामों को करे, इसका कुछ ठिकाना न रहा। पर राम ही बिगड़ी को बनाते हैं, मेरे पड़ोस में एक बूढ़ी बाम्हनी रहती हैं, उन से मेरा दुख न देखा गया। तीन बरस से मुझ दुखिया की सहारा वही हैं, वही मेरा सब काम काज कर देती हैं, उन को छोड़ मेरे घर में पखेरू पंख भी नहीं मारता। सच तो यह है, मेरे साथ अपने को कौन दुखिया बनावे, मुझ को रोना छोड़ और कुछ आता नहीं। जो दिन रात रोया करता है उस के पास कौन आता है। पाँच चार महीने से मेरी देह में रोग ने भी घर किया है, अब कुछ काम काज भी नहीं हो सकता, सूत भी नहीं कात सकती। इसी से दो दो तीन तीन दिन तक अन्न भी नहीं मिलता है, आप का कहना बहुत ठीक है, आप ने बहुत सोच कर कहा था, "भूख से इस लड़के की दसा ऐसी हो रही है।" अब मैं भी सोच रही हूँ, भूख ही से मेरा बच्चा इस दसा को पहुंच गया है, पर क्या करूं, सब गँवा सकती हूँ, धरम और लाज तो नही गँवा सकती !!! इस के नानिहाल में भी तो कोई नहीं रह गया, जो वहीं चली जाऊँ। चार बरस से मेरे मा बाप की भी खोज नहीं मिलती। वह दोनों जन अब से जगन्नाथ जी गये, फिर न फिरे, न जानें वह लोग कहाँ हैं, जीते हैं या मर गये, यह भी नहीं जान पड़ता। धरती तू क्यों नहीं फटती, जो मैं समा जाऊँ ? क्या मुझ सी दुखिया को तू भी ठौर नहीं दे सकती ? यह कह कर वह फिर रोने, कलपने लगी, और थोड़ी ही बेर में मुरझा कर धरती पर गिर पड़ी।

चौथा पाठ

बटोही ने जो कुछ आँखों देखा, कानो सुना, वह सब बातें उस को चकरा रही थीं, दुखी बना रही थीं, और सता रही थीं, पर इस घड़ी वह बहुत ही अनमना हो रहा था, वह दुखिया नारी रोई, मुरझा कर धरती पर गिरी, फिर आप ही सम्हली, पर वह वैसा ही अनमना बना रहा, न जाने क्या सोचता रहा। पर अब अचानक चौंकते ही कहा "देव-बाला !!" इस देवबाला नाम में न जाने कोई टोना था, न जाने कोई मुरझा देने वाली बात थी, जिस से इस नाम को सुनते ही वह तिरिया अचानक यह कह कर फिर अचेत हो गई "हाय ! मैं ऐसी आपे से बाहर हो रही हूँ, ऐसा मेरा जी ठिकाने नहीं है, जिस से बार बार जी में आने पर भी, यह न पहचान सकी—मुझ दुखिया को सहारा देनेवाला भैया देवनन्दन छोड़ और कोई नहीं है।" यह सुन कर हमारा बटोही, जो देवनन्दन छोड़ दूसरा नहीं है, फिर वैसा ही अनमना, फिर वैसा ही सोच में डूबा दिखलाई पड़ा, पर थोड़ी ही बेर में धीरज उस के मुखड़े पर देख पड़ी। उस ने उपाय कर के उस तिरिया को भी जो देवबाला है, सम्हाला। कुछ ही बेर में उसका भी जी ठिकाने हुआ, पर दोनों कुछ घड़ी चुप रहे, एक बात भी न बोले, न जाने कहाँ कहाँ की बातें सोचते रहे। मैं समझता हूँ, वही पुरानी बातें उन दोनों के जी में घूम रही थीं, वह सुख के दिन, वह आपस का प्यार, वह फुलवारी का मिलना, वह मीठी बातें, वह लड़कपन का रंग ढंग, फिर दोनों की अड़चलें, धरम के

झमेले, इसके पीछे भाई बहिन सा प्यार, वह अनूठे बरताव, एक एक करके आँखों के सामने फिर रहे थे, और इसी से वह दोनों कितनी बेर तक कुछ भी न बोले। पर इस घड़ी देवनन्दन के जी में कोई और ही बात ठन रही थी, इसलिये उन्हों ने ढाढ़स कर के कहा, देवबाला ! तुमारे दुख से कलेजा फटा जा रहा है, क्या करूँ, जो राम चाहते हैं करते हैं, पर मैं ने अपने जी में ठाना है जहाँ से होगा रमानाथ को मैं खोज निकालूंगा, यह मेरा काम है तुमारा नहीं, अब और कुछ पूछने को नहीं रहा पर तुम को एक बात बतलानी और रही है और वह रमानाथ का ठिकाना है। क्या कभी कोई चीठी आती है ? देवबाला ने कहा, उन की कोई चीठी जब से वे गये, नहीं आई, मैं उन का कुछ खोज ठिकाना नहीं जानती, मेरे भाग ने सभी बात बिगाड़ रक्खी है। इतना कहते कहते उस की आँखें फिर भर आईं, छल छल कर के आँसू टपक पड़े।

देवनन्दन चुप रहा, कुछ सोचने लगा, फिर बोला, अच्छा मैं खोज ठिकाना किसी भाँति जान लूँगा, तुम मत घबराओ। अभी पांच सात दिन मैं यहाँ रहूँगा, तब तक यह लड़का भी अच्छा हो जावेगा। और इसी गाँव में घूम फिर कर मैं रमानाथ का ठिकाना भी जान लूँगा। इसके पीछे मैं ठीक करूँगा, मुझ को क्या करना चाहिये। इतना कह कर वह फिर चुप हो गया और मन ही मन सोचने लगा।

देवबाला इस घड़ी देवनन्दन को देख रही थी। उस ने देखा उस की सब देह में राख मली हुई है, सिर पर लम्बी लम्बी जटायें हैं, हाथ में तूंबा जौर चिमटा है। गेरुये रंग का कपड़ा

वह पहने है, सब भेस उसका साधुओं का है। देवबाला ने देख भाल कर पूछा, देवनन्दन ! क्या तुम साधू हो गये हो ? पर वह कुछ न बोला, न जानें क्या सोचता रहा, फिर कहा, यह सब फिर कभी बतलाऊँगा।

अब भोर होने लगा था, इस लिये दोनों जन अपनी अपनी ठौरों से उठे और नहाने धोने में लग गये।

इसके पीछे देवनन्दन सात दिन यहाँ रहा। सात दिन में उसने इस घर की दो कोठरियों और एक ओसारे को बनवा कर ठीक किया, बरस दिन के खाने भर को नाज लिया, पाँच सात साड़ियाँ मोल लीं और यह सब देवबाला को दिया। इस बीच लड़का भी भली भाँति अच्छा हो गया था। इसलिये आठवें दिन कुछ रोक भी देकर देवनन्दन ने देवबाला से कहा—मैं अब जाता हूँ, जहाँ तक हो सकेगा, मैं तुरंत लौटूंगा, मैं ने इस गाँव में रमानाथ का कुछ टिकाना पाया है, लोग कहते हैं इस गाँव से चार कोस पर रामपुर नाम का एक गाँव है, उसमें भवानीदत्त नाम का कोई कायथ रहता है, पूरब में जहाँ रमानाथ रहते हैं वहीं यह कायथ भी आता जाता है, आज कल वह घर आया हुआ है, उससे पूछने पर रमानाथ की बहुत सी बातें जान पड़ेंगी, आज मैं वहीं रहूँगा, उनसे सब पूछ पाँछ कर कल्ह उसी ओर जाऊंगा, रमानाथ से भेंट होनी चाहिये, लिवा लाना मेरे हाथ है, मैं उनको तीन महीने के भीतर ही लेकर यहाँ पहुँचूँगा, तुम घबराना मत।

देवबाला बोली, मैं क्या कहूँ, जो तुम करते हो, उसमें मैं हाथ डाल नहीं सकती, जो हाथ डालूं भी तो तुम काहे को

मानोगे, मैं भी समझती हूँ भाई से बढ़ कर इस धरती में अपना कोई दूसरा नहीं है, आप जावें, मैं आप को रोक नहीं सकती, पर मैं बड़ी अभागिनी हूँ, इसी से मेरा कलेजा धक धक कर रहा है। यह कह कर देवबाला बहुत ही उदास और अनमनी हो गई। पर देवनन्दन ने उसको बहुत समझाया, ढाढ़स बँधाया, और इसके पीछे रामपुर की ओर पयान किया।

देवबाला के लिये फिर वही दिन रात आगे आये, पर उसके जी में यह बात बहुत उठा करती, क्या देवनन्दन साधू हो गये? उन का भेस साधुओं का क्यों है? अपना ब्याह उन्होंने नहीं किया क्या? जब मैं ने उनसे इन बातों को पूछा तो उन्हों ने क्यों नहीं बतलाया? पर कोई ऐसी बात उसके जी में नहीं समाती थी जिससे उसका बोध होवे।

पाचवाँ पाठ

वह देखो, सामने रामपुर गाँव दिखलाई पड़ता है, चारों ओर हरे भरे बाँस के पेड़ लहरा रहे हैं, उनके पास ही दो एक पेड़ आम, जामुन, महुआ और कटहल के दिखलाई देते हैं, पास ही एक बहुत बड़ा ताल है, ताल के ऊपर गाँव से थोड़ा हट कर एक बड़ा भारी बड़ का पेड़ है, धीमी बयार लगने से उस के पत्ते धीरे धीरे हिल रहे हैं, उस पर एक झंडी भी फहरा रही है, जान पड़ता है वहां काली का थान है। उसी पेड़ के नीचे दो जन बैठें बातें कर रहे हैं। उसमें एक हमारे जान पहचान वाले देव-

नन्दन हैं, और दूसरा वही भवानीदत्त है! उनमें बहुत बेर तक बातें होती रहीं, जिससे देवनन्दन ने रमानाथ की बहुत सी बातें जानीं, पिछली बातें उन लोगों की यह थीं—

देवनन्दन ने पूछा, जब रंगपुर में तुम दोनों जनें साथ रहते थे, तो रमानाथ ने फिर रंगपुर का रहना क्यों छोड़ा ?

भवानीदत्त। उन्हों ने रंगपुर को अपने आप नहीं छोड़ा, मैं कह चुका हूँ। रमानाथ का चालचलन ठीक नहीं है, वह बड़ा छटा और लुच्चा है, जिस बाबू के यहाँ वह काम काज करता था, उन्हीं बाबू की टहलुनी के साथ एक दिन वह पकड़ा गया, बाम्हन जान कर बाबू ने और कुछ तो न किया, पर टहलुनी और रमानाथ दोनों को अपने यहाँ से निकाल दिया, तभी से वह कलकत्ते रहता है, टहलुनी भी उसके साथ है, यह दो बरस की बात है, पर मैं यह ठीक कह सकता हूँ—अब भी वह कलकत्ते ही में है ?

देवनन्दन। जब यह दो बरस की बात है, तो फिर तुम कैसे कह सकते हो—अब भी वह कलकत्ते में है ?

भवानीदत्त। मुझ को यहाँ आये दस पंदरह दिन हुये, मेरे वहाँ से चलने के दस पाँच दिन पहले बाबू का एक चाकर कलकत्ते से आया था, वह कहता था मुझ से और रमानाथ से वहाँ भेंट हुई थी, इसी से मैं जाता हूँ, अब तक वह कलकत्ते में है। उसने और भी कई बातें रमानाथ की मुझ से कही थीं। पर उन को मैं आप से नहीं कहना चाहता, उनमें कोई बात काम की नहीं है, सब ऐसी ही हैं, जिससे रमानाथ का नाम लेने को मन नहीं करता।

देवनन्दन। जाने दो, मैं भी उनको नहीं सुनना चाहता, मुझ को उन बातों से कोई काम नहीं है। जो कुछ मैं जानना चाहता था, जान चुका।

इतना कह कर देवनन्दन चुप हो गये। भवानीदत्त ने फिर कोई बात न छेड़ी। देवनन्दन ने कुछ घड़ी पीछे कलकत्ते की ओर पयान किया।

छठवां पाठ

भादों का महीना, बड़ी अँधियाली छाई है, बादल घिरे हैं, दो एक बूँदें भी पड़ रही हैं, रात के एक बजे हैं, कहीं कोई आता जाता नहीं, पहरेवाले लम्बी ताने सो रहे हैं, दूर एक धुँधला उँजाला बिजली का हो रहा है, पर उससे चारो ओर की अँधियाली को कुछ धक्का नहीं पहुँचता है, वह दूर के तारे की भाँत अपनी ही ठौर चमक रहा है। इसी बेले कलकत्ते की सड़क पर एक भलामानस बहुत ही धीरे धीरे जा रहा है, उससे भी धीरे धीरे पाँव दबाये एक जन उसका पीछा कर रहा है, इन दोनों से पाँच सात हाथ दूर एक जन और इन दोनों पर आँख गड़ाये लम्बी डगों चल रहा है। ज्यों ही वह भलामानस एक मोड़ पर पहुँचा, और मुड़ कर एक गली में जाने लगा, वोंही पीछेवाला जन उस पर झपटा और उठा कर उसको दे मारा, छाती पर चढ़ बैठा और चाहता था, छुरे से उसका गला काट डाले, पर उस तीसरे जन ने उसको भी आकर धर दबाया, उसके

हाथ से छुरे को छीन लिया, और बहुत फुर्ती के साथ उसका हाथ पाँव बाँध कर उसको वहीं डाल दिया। भलेमानस के औसान जाते रहे थे, वह अपने को मरा ही समझ रहा था, पर अब उसके जी में भी जी आया, वह चाहता था, चिल्लाकर पहरेवालों को बुलाऊं, पर उस तीसरे जन ने रोका, कहा आप चुप रहें, मेरी बातों को सुन लें, फिर जो चाहें करें। पहरेवालों को बुलाकर आप क्या करेंगे, जब तक मैं यहाँ हूँ आपका कोई एक रोआं भी नहीं छू सकता। उन्होंने कहा—आप जो कहेंगे मैं करूँगा, आप ने मेरा जी बचाया है, आपके कहन से मैं कभी मुड़ना नहीं चाहता। वह बोले, यहाँ कुछ न कहूँगा, आप किसी दूसरी ठौर चलें, वहीं सब बातें होंगी, मैं इस बँधुये को भी साथ ले चलूंगा। उन्होंने कहा, अच्छा आइये, मेरे साथ चले आइये। कुछ बेर में यह तीनों जन एक घर में पहुँचे। वहाँ एक खुली कोठरी में बैठकर इन लोगों में बातचीत होने लगी। एक जलते हुये दीये छोड़ वहाँ और कोई न था।

पहले तीसरे जन ने भलेमानस से कहा, आप बताइये, आप कौन हैं, क्या आप इस बँधुये को पहचानते हैं? इसने क्यों आज आप पर छुरा चलाना चाहा था?

उन्होंने कहा, मैं मारवाड़ी हूँ, आप की दया से इन दिनों मेरा काम काज कुछ अच्छा है, इसी से यहाँ के निठल्लू और निकम्मे सब मुझको कभी कभी घेरा करते हैं, मैं भी उनको कभी कभी कुछ दे दिया करता हूँ, पर अब इनमें गुण्डे और लुच्चे भी बहुत हो गये हैं, वह डरा कर बहुत कुछ लेना चाहते हैं, जो न दो तो इसी भाँति गला घोंट कर मार देने ही में अपनी बड़ाई

समझते हैं। जो इस घड़ी यहाँ बैठा है, इसने परसों मुझसे पचास रुपये रोक माँगे थे, मैंने कहा इस घड़ी मैं तुमको कुछ नहीं दे सकता, मैं समझता हूँ इसी से आज यह मेरा जी लेना चाहता था। इसको मैं पहचानता हूँ, यह मुझ से दो चार बार दो दो एक एक रुपया ले चुका है। यह पछाह का रहनेवाला बाह्मन है। आप बताइये आप कौन हैं?

तीसरे जन ने कहा, आप देख ही रहे हैं, मैं एक साधू हूँ, दूसरे के दुख को दूर करना ही हम लोगों का काम है, डेढ़ महीना हुआ, मैं कलकत्ते आया हूँ, तब से रात दिन इनको, जो आप के सामने बैठे हैं, खोज रहा हूँ, संजोग की बात है आज अचानक इनसे भेंट हो गई। मैं इन्हीं की खोज में एक ठौर जा रहा था, मग में देखा, आप पर घात लगाये ये चले जा रहे हैं, मुझको खटका हुआ, मैं भी पीछे पीछे चला, जो सोचा था, वही हुआ, पर आप का जी बच गया, यह बड़ी बात हुई, मैंने यहाँ पहुँचने से पहले इनको नहीं पहचाना था, दीये के साम्हने आने पर मैंने इनको पहचाना, मेरा काम भी हुआ, अब मैं आप से यही चाहता हूँ, आप इनका जी छोड़ दें, बिना पहचाने भी मैं इनको बचाना चाहता था, और इसीलिये आपको वहाँ से यहाँ लिवा लाया, बोल चाल होने पर पहरेवालों से पकड़े जाने का डर था।

मारवाड़ी ने कहा, एक तो यह बाम्हन हैं, दूसरे आप कहते हैं, इसलिये जाइये, मैंने इन को छोड़ दिया, पर यह न जान पड़ा, आप इनको क्यों खोज रहे हैं।

मैं सब बातों को कह कर आप का जी भी दुखाना नहीं चाहता, पर अब इन से पूछूंगा। यह कह कर उस तीसरे जनने,

उस जन की ओर फिर कर कहा, क्यों, मुझको पहचानते हो ? रमानाथ तुम्हारा ही नाम न है ?

रमानाथ के जी में एक घड़ी एक अचंभे का उलट फेर हो रहा था। वह सोच रहा था एक ये हैं जो दूसरे के दुख को दूर करना ही अपना धरम समझते हैं, एक मैं हूँ, जो दिन रात दूसरे के सताने ही में चैन पाता हूँ, क्यों उनका जी ऐसा है, और मेरा ऐसा ! मैं इसको समझ नहीं सकता हूँ। पर कुछ कुछ जी में आज यह बात समाती है, जो भले हैं, उन्हीं को सुख मिलता है मैं जितना ही सुख को खोजता फिरता हूँ, उतना ही वह मुझ से दूर भागता है, राम जानें यह क्या बात है, यह सोच कर वह बोला, हाँ, रमानाथ मेरा ही नाम है, पर मैं आपको पहचानता नहीं हूँ, आप बड़े लोग हैं सब कुछ जान सकते हैं, अनजान को भी पहचान सकते हैं, पर मैं पापी हूँ, आप जैसों को कैसे पहचान सकता हूँ।

यह तीसरे जन हमारे देवनन्दन हैं। रमानाथ की बातें सुन कर उनका जी भर आया, उन्होंने झट उसका हाथ पाँव खोल दिया। पीछे मारवाड़ी से कहा, अब हम लोग जाते हैं, आप भी घर में जाइये। पर एक बात आप से कहे जाता हूँ, आप धनी हैं, आप के बैरी कितने होंगे, इसलिये आपको बहुत रात गये घर से बाहर न जाना चाहिये।

मारवाड़ी ने कहा, आप बहुत ठीक कहते हैं, पर आज दो घड़ी रात गये अचानक मेरा साथ मेरे साथियों से छूट गया, मैं एक भलेमानस के यहाँ काम से गया था, वहाँ से आ रहा था, बीच ही में यह बात हो पड़ी। साथ तो छूटा ही, पंथ भी भूल

गया, इसी से आज यह धोखा हुआ, नहीं तो मैं कभी रात को अकेले बाहर नहीं जाता, और न बहुत रात बीते तक कहीं रहता हूँ।

इतना कह कर वह मारवाड़ी उठा, और घर में से पाँच पाँच सौ रुपये की दो थैलियाँ लाकर देवनन्दन के सामने रक्खीं, और कहा, आप ने जो कुछ आज मेरे साथ किया है, उसका पलटा जनमं भर मुझ से नहीं हो सकता, पर इन दो थैलियों को मैं आप की भेंट करता हूँ, आप इनको लीजिये, और अपना टहलुआ मुझको समझते रहिये।

देवनन्दन ने कहा, रुपया लेकर मैं क्या करूँगा, मैंने तुमारा जी बचा कर अपना काम किया है, तुम इन रुपयों को अपने पास रक्खो, इनको किसी धरम के काम में लगाओ, भूखों, कंगालों में इनको बाँटो, इसी से मेरे जी को सुख होगा, तुमारा जनम सुधरेगा, धरती में इससे बढ़ कर कोई दूसरा काम नहीं है।

इतना कह कर देवनन्दन, रमानाथ के साथ चले गये।

सातवाँ पाठ

धीरे धीरे गंगा बह रही हैं, घाट पर कोई नहाता है, कोई जल भरता है, कोई उतरता है, कोई चढ़ता है कोई खड़ा निकलते हुए सूरज को जल चढ़ाता है, वहीं दो जन और बैठे हैं, एक देवनन्दन और दूसरे रमानाथ। भोर के कामों से छुट्टी पा कर

इन दोनों जनों में बातें हो रही हैं। देवनन्दन ने कहा—रमानाथ, आज चार साढ़े चार बरस तुमको घर छोड़े हुआ, तुम क्यों ऐसे हो गये हो जो घर चीठी भी नहीं लिखते, क्या तुमको अपने उस छोटे बच्चे, अपने उस सीधी घरनी की भी सुरत नहीं होती! उनका दिन कैसे बीतता होगा, उनको खाने पहनने को कौन देता होगा, कपड़ा न रहने पर, दो दो दिन पीछे भी कुछ खाने को न मिलने पर, वे किस का मुँह देखते होंगे, क्या इन सब बातों को तुम कभी नहीं सोचते? तुम्हारे छोड़ जिनका कोई दूसरा नहीं है, तुम्हीं जिनके जाने मरने के साथी हो, क्या तुम्हीं को फिर इतना निठुर होना चाहिये? पसू भी अपने बच्चे को प्यार करता है। चिड़ियां भी अपने जोड़े के साथ रहती हैं, पर तुम्हारा जी न जानें कैसा है, जा तुम इन्हीं सबको भूले बैठे हो। जब वह तुम्हारा छोटा बच्चा भूख लगने पर मा, मा, करता, सूखे मुँह आकर अपनी मा के पास खड़ा होता होगा, कहता होगा मा! भूख लगी है, उस घड़ी उस दुखिया पर कैसी बीतती होगी, वह कितनी रोती होगी, क्या यह सोच कर तुम्हारा कलेजा नहीं कसकता? वह भलेमानस की घरनी है, तुम को छोड़ उसको सहारा देनेवाला कौन है!!! रमानाथ! जो अब तक तुमने इन बातों को नहीं सोचा, तो क्या अब भी न सोचोगे?

रमानाथ ने रोते रोते कहा—कल्ह जब से मैंने आपको देखा है, तभी से मेरा जी ठिकाने नहीं है, न जानें क्यों बहुत सी पिछली बातों की सूरत हो रही है, आज आप की बातों को सुन कर कलेजा फटा जाता है, जी घबरा रहा है, पर मुझको यह नहीं सूझता है, मैं क्या करूँ, न जानें उस जनम में मैंने

कैसी कमाई की है जिससे मुझ को यह सब भुगतना पड़ रहा है।

देवनन्दन! तुम उस जनम की कमाई को क्यों झींखते हो, उस जनम की कमाई तुम्हारी बहुत अच्छी रही है, जो अच्छी न होती, बाम्हन के घर में जनम न होता, देवबाला ऐसी घरनी न मिलती। तुम अपनी इस जनम की कमाई को झींखो, जिस से दूसरे जनम में न जानें तुम्हारी कौन गत होगी। जो देवबाला तुम्हारे पाँवों की धूल माथे में लगाकर अपने को सुहागिनी जानती, जिस देवबाला ने तुम्हारे लिये अपनी देह के गहने तक उतार दिये, जिस देवबाला को तुम्हारा औगुन भी गुन जान पड़ता है, जिसने तुम्हारी बुराई पर आँख न डाली, तुमको देवता समझा, तुम्हारा मुँह देख कर ही सुख माना, हाय! तुमने उसी देवबाला को छोड़ा, और उसको छोड़ा भी तो किसी बाबू की टहलुनी को रक्खा, क्या इससे भी बुरी कमाई कोई हो सकती है? रमानाथ! तुम्हारा जनम बाम्हन के घर में हुआ है, तुमको दूसरों का भला करना चाहिये, जो कुछ मिल जाय उसी पर संतोख रखना चाहिये, ऐसा काम करना चाहिये जिससे किसी का जी न दुखे, सब से प्यार के साथ बरतना चाहिये, जिन कामों को करने से धरती के सब जीवों का भला हो, उन्हीं में जी लगाना चाहिये, पर तुम चोरी, ठगी, बटपारी करते हो, धोखा देकर डरा कर दूसरों से धन लेते हो, जिन बुराइयों का नाम सुनकर रोआँ खड़ा होता है, उन्हीं के करने में जी लगाते हो, कल्ह तुमको मैंने अपनी आँखों दूसरे का गला काटते देखा, इस पर भी तुम्हारे पास एक कौड़ी नहीं है, इन बुरे कामों को करके तुम जो कमाते हो, उसको रंडी भडुओं को खिला देते हो, नाच

रंग में उड़ा देते हो; क्या इन बुराइयों से बढ़ कर भी कोई बुराई है ! इन कमाइयों का पलटा उस जनम में तुमको क्या मिलेगा, क्या भूल कर भी अपने जी में सोचते हो ! कोल, भील, भर, पासी जिन कामों के करने में हिचकते हैं, जिन बुराइयों का नाम सुन कर कान पर हाथ रखते हैं, वही बुराइयाँ तुमसे होती हैं ! उन्हीं कामों को तुम करते हो ! ! क्या इससे नरक में भी ठौर मिलेगी ? मैं समझता हूँ, ऐसे लोगों को देख कर नरक भी काँप उठेगा। रमानाथ ! क्या अब भी तुम सोच सकते हो ? क्या अब भी सच्चे जी से भगवान को पुकार कर कह सकते हो ? प्यारे ! जो चूक आज तक मुझसे हुई, आगे को मैं कान पकड़ता हूँ, तू उनको क्षमा कर, तेरी ही दया से मेरे सब पापों के कट जाने का आसरा है। मैं समझता हूँ, तुम बाम्हन के घर में जनमे हो, बाम्हन का ही लोहू माँस तुमारे में है, अब तक तुमने जो किया सो किया, अब से अपना जनम बना सकते हो ?

रमानाथ रो रहा था, फूटफूट कर रो रहा था, पाप एक एक कर के उस की आँखों के सामने नाच रहे थे, देवनन्दन की बातों से उसके कलेजे पर चोट सी लगी थी, वह डरा भी बहुत था, उस से बोला न जाता था, पर उसने जी थाम कर कहा, आप मुझ को बचाइये, आप मुझ डूबते को सहारा दीजिये, आप जो कहेंगे, वही मैं करूंगा, दो महीना हुआ मेरी रखेली भी मर गई, यह झंझट भी मेरे सिर से जाता रहा, रहा पेट का झमेला, उस के निर्बाह के लिये जो आप कहेंगे; वही मैं करूँगा; जिस में मेरा भला हो; जिस से मैं भगवान को अपना मुँह दिखा सकूं; आप उन्हीं बातों को बताइये; अब मैं उन्हीं को करूंगा।

देवनन्दन ने कहा, सब से सीधा ढर्रा यही है तुम घर चल कर अपने बालबच्चों में रहो, अपनी दुखिया घरनी के उजड़ते हुये घर को बसाओ, भाग से, भली कमाई से, जो मिले उसको खा पी कर अपना दिन बिताओ, इसी में तुमारा भला होगा, भगवान को मुँह दिखाने जोग तुम इन्हीं कामों को करके होगे।

रमानाथ ने कहा—ना! घर मैं न चलूंगा, कौन मुँह ले कर चलूं! मैं आप ही के साथ साधू हो कर रहूंगा। अपना भला मैं इसी में देखता हूं।

देवनन्दन। क्यों न घर चलोगे? घर चलना होगा! यही मुँह ले कर घर चलो, इसी मुँह के लिये तुमारी दुखिया घरनी तरसती है! यही मुँह उसके अँधियाले जी का ऊँजाला है? इसी मुँह के देखने के लिये वह एक एक घड़ी को एक एक बरस ऐसा समझ रही है। जो अपने बाल-बच्चों में धरम के साथ रहता है, उसको साधू बनने से क्या काम है! तुम घर चलो, तुमारी भलाई इसी में है।

रमानाथ। मेरे खेत सब बंधक पड़े हैं, दूसरा काम करने आता नहीं, आज तक मुझको अपने ही पेट से छुट्टी नहीं है, कल्ह घर चलने पर बाल-बच्चों का निबाह कैसे होगा, जिन बखेड़ों से घबरा कर मैं भागा था, उन्हीं सब बखेड़ों को आप फिर मेरे सिर डालते हैं, घर चलने पर मेरी गत फिर जैसी की तैसी होगी, आप दया करके मुझको घर चलने को न कहिये।

देवनन्दन। यह लो, इसको पढ़ो, देखो, तुम्हारे सब खेत छूट गये, मैं इन सब बातों को ठीक कर चुका हूँ, मैं जानता था, तुम घर आने की बात चलने पर यही कहोगे, मैं घर चल कर

खाऊँगा क्या ? इसी लिये इसका रुपया चुकाकर इसको साथ लेता आया हूँ, जो तुम न पढ़ सकते हो, इसको किसी से पढ़ा देखो। फिर आज तक तुम्हारे बाल बच्चों का निबाह कैसे होता है ! जिस दाता ने आज तक उनका निबाह किया है, वही अब भी करेगा, तुमको ऐसी ऐसी बातें न उठानी चाहियें।

रमानाथ, देवनन्दन की करतूत देखकर और उनकी बात सुनकर अचरज में आ गया, बोला अब मैं क्या कहूँ, जो आप कहते हैं वही करूँगा, घर चलूँगा, मैं आपकी बात टाल नहीं सकता, आप कहते हैं घर चलने ही से मेरा भला होगा, तो मैं घर चलूँगा।

इतनी बातें होने पीछे दोनों जन घाट पर से उठे और अपने डेरे की ओर चले गये।

आठवाँ पाठ

जिस दिन देवनन्दन, देवबाला को समझा बुझा कर रमानाथ को खोजने निकले, उसी दिन देवबाला को अपना दिन फिर फिरने का भरोसा हुआ, एक महीने तक वह बहुत अच्छी रही, पर सुख उसके भाग में बदा न था, दूसरे महीने उसको थोड़ा तप आने लगा, तीसरे महीने वह बहुत बढ़ गया, खाना पीना सब छूट गया, दिन दिन वह दुबली होने लगी, कुछ दिन तक उठती बैठती रही, फिर उठ बैठ भी न सकती, दिन रात खाट पर पड़ी रहने लगी, अपना कोई पास न था, देखभाल दौड़धूप कौन करे, उसी पड़ोस की बूढ़ी बाह्मनी से जो कुछ बनता, वह

अब की बार उस की आँखें फिर खुलीं, उस ने चारों ओर देखा, कहा, जीजी ! एक बात और जी में रह जाती है, क्या अब उनको न देख सकूंगी ? इस घड़ी जो उनको एक बार देख पाती, तो सब दिन का दुख भूल जाती, मरने का दुख भी भूल जाती। देवनन्दन को गये आज तीन महीने पूरे हो गये। जाती बेले उन्होंने कहा था, मैं उन को तीन महीने के भीतर ही लेकर पहुँचूंगा, क्या आज वह आवेंगे, जीजी ! जिस दिन देवनन्दन उनको खोजने निकले, उस दिन मुझ को बहुत भरोसा हुआ था, मुझ को कई दिन ऐसा जान पड़ा, वह आये हैं, मैं उनके पास बैठी हूँ, रो रही हूँ, कहती हूँ, मैं ने क्या किया, जो तुम मुझ को भूल गये थे, तुम्हारा कैसा कलेजा है, जो चार चार बरस तुम ने मेरी सुरत नहीं की, तुम बड़े निठुर हो। जो तुम्हारे ऊपर अपना प्रान तक निछावर करना चाहती है, तुम्हारा ही मुँह देख कर जो सब कुछ भूल जाती है, क्या उससे भी तुमको रूठना चाहिये ? वह इन बातों को सुनते हैं, अपने हाथों मेरा आंसू पोंछते हैं, कहते हैं, क्या मैं तुम को भूल सकता हूँ, पर भाग ने जो चाहा सो किया, जाने दो अब इन बातों को कह कर मुझको न लजवाओ। पर हाय ! जीजी ! यह सब मेरा सपना था, वह तो आज भी नहीं आये, जी की जी ही में रही जाती है, जो मैंने कुछ पुन्न किया हो, जो मेरी पहले जनम की कोई भली कमाई हो, तो मैं यही चाहती हूँ उनको एक बार और देखूँ, इस मरती बेले और एक बार उनको देख कर अपनी आँखें ठंढी करूँ। जीजी ! क्या भगवान मेरी यह पुकार सुनेंगे ?

जिस घड़ी देवबाला, बुढ़िया से इन बातों को कह रही थी,

उसी बेले बाहर किसी के पाँव की आहट सुन पड़ी। थोड़ी बेर में देवनन्दन ने घर के भीतर पाँव रक्खा, देखा, देवबाला की सासें चल रही हैं, आँखें टँग गई हैं, और बात उसके मुँह से बहुत ही रुक रुक कर निकल रही है। देवनन्दन बाहर ही से देवबाला की दसा सुनते आये थे, घर में आकर उसकी यह दसा देख कर उनका कलेजा फट गया, बहुत सम्हालने पर भी जो न सम्हला, पर उन्होंने कलेजा थाम कर कहा, देवबाला! रमानाथ आये हैं, क्या कहती हो?

देवबाला ने प्यार के आँसू बहा कर कहा, भैया! अब इस जनम में भेंट न होगी, मैं चली, पर मरने के दुख से भी बढ़ कर जो दुख था, उसको तुम ने दूर किया, मैं इस का कहां तक निहोरा करूँ, मुझ को भूल न जाना, मैं अब इस घड़ी यही चाहती हूँ, उनको यहाँ आने दो।

देवनन्दन बड़े दुख के साथ घर में से बाहर हो गये, बुढ़िया भी वहाँ से उठ कर दूसरी ठौर चली गई, थोड़ी बेर में धीरे धीरे सिर नीचा किये रमानाथ ने उस घर में पाँव रक्खा। रमानाथ का सिर लाज से ऊपर न होता था, आँख से आँसू भी गिर रहा था। देवबाला ने उसको आते देखा, कुछ घड़ी के लिये सब दुख भूल गई। इस घड़ी उस की आँखों में आँसू न था, वह बोली, "क्या कहूँ, भाग में यही लिखा था, साढ़े चार बरस पीछे प्यारे से भेंट होगी भी तो उस घड़ी जब प्रान बाहर निकलते होंगे, तब भी मैं अपने को बड़भागिनी समझती हूँ, जो मरते मरते मुझ को तुमारे पाँवों की धूल मिल गई। इतना कह कर देवबाला ने रमानाथ को पास बैठाला, पाँवों की धूल लेकर आँखों से मला,

माथे पर चढ़ाया, पीछे कहा, मैंने जान बूझ कर कभी चूक नहीं की है, जो भूल कर मुझसे कोई चूक हुई हो, तो मैं चाहती हूँ तुम उसको छमा करो। जो कुछ भी तुमारे जी में मैल होगी, तो मैं भगवान को मुँह कैसे दिखाऊंगी ? रमानाथ ने कहा, प्यारी तुम से, और चूक ! यह कैसे हो सकता है ! पर जो कोई चूक हो, मैंने उसको छमा किया, भगवान तुम्हारा भला करें। अब की बार देवबाला फिर रोई, बोली, कैसा अच्छा होता, जो यह बात कुछ दिन पहले तुमारे जी में आती ! भाग ने जो चाहा किया, अब मैं चली, इस बच्चे को तुम्हें सौंपे जाती हूँ। देखो, यह रो रहा है, इस को चुप कराओ, और असीस दो मैं जनम जनम तुमारे चरनों की दासी हो कर जनमूं पर ऐसा दुख किसी जनम में न पाऊं, जैसा इस जनम में मिला है" इतना कहते कहते देवबाला की आँखें अचानक मुंद गईं, और देखते ही देखते प्रान उस की दुखिया देह से बाहर हो गया।

श्रीयुत अयोध्या सिंहजी उपाध्याय

दूसरा गुच्छ

मन्त्र

(१)

पंडित लीलाधर चौबे की जबान में जादू था। जिस वक्त वह मंच पर खड़े होकर अपनी वाणी की सुधावृष्टि करने लगते थे, श्रोताओं की आत्माएँ तृप्त हो जाती थीं, लोगों पर अनुराग का नशा छा जाता था। चौबेजी के व्याख्यानों में तत्व तो बहुत कम होता था, शब्द-योजना भी बहुत सुंदर न होती थी, लेकिन उनकी शैली इतनी आकर्षक, रंजक और मर्मस्पर्शी थी कि एक ही व्याख्यान को बार बार दुहराने पर भी उसका असर कम न होता, बल्कि घन की चोटों की भाँति और भी प्रभावोत्पादक हो जाता था। हमें तो विश्वास नहीं आता, किंतु सुननेवाले कहते हैं, उन्होंने केवल एक व्याख्यान रट रक्खा है, और उसी को वह शब्दशः प्रत्येक सभा में एक नए अंदाज़ से दुहराया करते हैं। जातीय गौरव-गान उनके व्याख्यानों का प्रधान गुण था; मंच पर आते ही भारत के प्राचीन गौरव और पूर्वजों की अमर कीर्ति का राग, छेड़कर सभा को मुग्ध कर देते थे। यथा—

सज्जनो ! हमारी अधोगति की कथा सुनकर किसकी आँखों से अश्रु-धारा न निकल पड़ेगी ? हमें अपने प्राचीन गौरव को याद करके संदेह होने लगता है कि हम वही हैं, या बदल गए। जिसने कल सिंह से पंजा लिया, वह आज चूहे को देखकर बिल खोज रहा है ! इस पतन की भी कोई सीमा है ! दूर क्यों जाइए,

महाराज चंद्रगुप्त के समय को ही ले लीजिए। यूनान का सुविज्ञ इतिहासकार लिखता है कि उस जमाने में यहाँ द्वार पर ताले न डाले जाते थे, चोरी कहीं सुनने में न आती थी, व्यभिचार का नाम-निशान न था, दस्तावेज़ों का आविष्कार ही न हुआ था, पुर्जों पर लाखों का लेन-देन हो जाता था, न्याय-पद पर बैठे हुए कर्मचारी मक्खियाँ मारा करते थे। सज्जनो, उन दिनों कोई आदमी जवान न मरता था (तालियाँ)। हाँ, उन दिनों कोई आदमी जवान न मरता था, बाप के सामने बेटे का अवसान हो जाना एक अश्रुत-पूर्व—एक असंभव घटना—थी। आज ऐसे कितने माता-पिता हैं, जिनके कलेजे पर जवान बेटों का दाग़ न हो? वह भारत नहीं रहा, भारत ग़ारत हो गया!

यही चौबेजी की शैली थी। वह वर्तमान की अधोगति और दुर्दशा तथा भूत की समृद्धि और सुदशा का राग अलापकर लोगों में जातीय स्वाभिमान को जाग्रत् कर देते थे। इसी सिद्धि की बदौलत उनकी नेताओं में गणना होती थी। विशेषतः हिन्दू-सभा के तो वह कर्णधार ही समझे जाते थे। हिन्दू सभा के उपासकों में कोई ऐसा उत्साही, ऐसा दक्ष, ऐसा नीति-चतुर दूसरा न था। यों कहिए कि सभा के लिये उन्होंने अपना जीवन ही उत्सर्ग कर दिया था। धन तो उनके पास न था, कम-से-कम लोगों का विचार यही था, लेकिन साहस, धैर्य और बुद्धि-जैसे अमूल्य रत्न उनके पास अवश्य थे; और ये सभी सभा को अर्पण थे। 'शुद्धि' के तो मानो वह प्राण ही थे। हिंदू-जाति का उत्थान और पतन, जीवन और मरण उनके विचार में इसी प्रश्न पर अवलंबित था। शुद्धि के सिवा अब हिंदू-जाति के पुनर्जीवन का और कोई उपाय

न था। जाति की समस्त नैतिक, शारीरिक, मानसिक, सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक बीमारियों की दवा इसी आंदोलन की सफलता में मर्यादित थी, और वह तन-मन से इसका उद्योग किया करते थे। चंदे वसूल करने में चौबेजी सिद्धहस्त थे। ईश्वर ने उन्हें वह 'गुरु' बता दिया था कि पत्थर से भी तेल निकाल सकते थे। कंजूसों को तो वह ऐसा उलटे छुरे से मूड़ते थे कि उन महाशयों को सदा के लिये शिक्षा मिल जाती थी। इस विषय में पंडितजी साम, दाम, दंड और भेद, चारों नीतियों से काम लेते थे, यहाँ तक कि राष्ट्र-हित के लिये डाका और चोरी को भी क्षम्य समझते थे।

(२)

गरमी के दिन थे। लीलाधरजी किसी शीतल पार्वत्यप्रदेश को जाने की तैयारियाँ कर रहे थे कि सैर-की-सैर हो जायगी, और बन पड़ा, तो कुछ चंदा भी वसूल कर लावेंगे। उनको जब भ्रमण की इच्छा होती, तो मित्रों के साथ एक डेपुटेशन के रूप में निकल खड़े होते। अगर एक हज़ार रुपए वसूल करके वह इसका आधा सैर-सपाटे में खर्च भी कर दें, तो किसी की क्या हानि? हिंदू-सभा को तो कुछ-न-कुछ मिल ही जाता था। वह न उद्योग करते, तो इतना भी तो न मिलता। पंडित जी ने अब की सपरिवार जाने का निश्चय किया था। जब से 'शुद्धि' का आविर्भाव हुआ था, उनकी आर्थिक दशा, जो पहले बहुत शोचनीय रहती थी, बहुत कुछ सँभल गई थी।

लेकिन जाति के उपासकों का ऐसा सौभाग्य कहाँ कि शांति-निवास का आनन्द उठा सकें? उनका तो जन्म ही मारे-मारे

फिरने के लिये होता है। खबर आई कि मदरास-प्रांत में तबलीग़-वालों ने तूफ़ान मचा रक्खा है। हिन्दुओं के गाँव-के-गाँव मुसलमान होते जाते हैं। मुल्लाओं ने बड़े जोश से तबलीग़ का काम शुरू किया है। अगर हिंदू-सभा ने इस प्रवाह को रोकने की आयोजना न की, तो सारा प्रान्त हिन्दुओं से शून्य हो जायगा—किसी शिखाधारी की सूरत न नज़र आवेगी।

हिन्दू-सभा में खलबली मच गई। तुरन्त एक विशेष अधिवेशन हुआ, और नेताओं के सामने यह समस्या उपस्थित की गई। बहुत सोच-विचार के बाद निश्चय हुआ कि चौबेजी पर इस कार्य का भार रक्खा जाय। उनसे प्रार्थना की जाय कि वह तुरंत मदरास चले जायँ, और धर्म-विमुख बंधुओं का उद्धार करें। कहने ही की देर थी। चौबेजी तो हिन्दू-जाति की सेवा के लिये अपने को अर्पण ही कर चुके थे; पर्वत-यात्रा का विचार रोक दिया, और मदरास जाने को तैयार हो गए। हिंदू-सभा के मंत्री ने आँखों में आँसू भर कर उनसे विनय की कि महाराज, यह बोड़ा आप ही उठा सकते हैं। आप ही को परमात्मा ने इतनी सामर्थ्य दी है। आप के सिवा ऐसा कोई दूसरा मनुष्य भारतवर्ष में नहीं है, जो इस घोर विपत्ति में काम आवे। जाति की दीन-हीन दशा पर दया कीजिए। चौबेजी इस प्रार्थना को अस्वीकार न कर सके। फ़ौरन् सेवकों की एक मंडली बनी, और पंडितजी के नेतृत्व में रवाना हुई। हिन्दू-सभा ने उसे बड़ी धूम से बिदाई का भोज दिया। एक उदार रईस ने चौबेजी को एक थैली भेंट की, और रेलवे-स्टेशन पर हज़ारों आदमी उन्हें बिदा करने आए।

यात्रा का वृत्तांत लिखने की जरूरत नहीं। हर एक बड़े स्टेशन पर सेवकों का सम्मान-पूर्ण स्वागत हुआ। कई जगह थैलियाँ मिलीं। रतलाम की रियासत ने एक शामियाना भेंट किया। बरोदा ने एक मोटर दी कि सेवकों को पैदल चलने का कष्ट न उठाना पड़े, यहाँ तक कि मदरास पहुँचते पहुँचते सेवादल के पास एक माकूल रक़म के अतिरिक्त जरूरत की कितनी ही चीजें जमा हो गईं। वहाँ आबादी से दूर, एक खुले हुए मैदान में हिन्दू-सभा का पड़ाव पड़ा। शामियाने पर राष्ट्रीय झंडा लहराने लगा। सेवकों ने अपनी-अपनी वर्दियाँ निकालीं, स्थानीय धन-कुबेरों ने दावत के सामान भेजे, रावटियाँ पड़ गईं। चारों ओर ऐसी चहल-पहल हो गई, मानो किसी राजा का कैंप है।

(३)

रात के आठ बजे थे। अछूतों की एक बस्ती के समीप, सेवक-दल का कैंप गैस के प्रकाश से जगमगा रहा था। कई हजार आदमियों का जमाव था, जिनमें अधिकांश अछूत ही थे। उनके लिये अलग टाट बिछा दिए गए थे। ऊँचे वर्ण के हिन्दू कालीनों पर बैठे हुए थे। पंडित लीलाधर का धुआँधार व्याख्यान हो रहा था—"तुम उन्हीं ऋषियों की संतान हो, जो आकाश के नीचे एक नई सृष्टि की रचना कर सकते थे, जिनके न्याय, बुद्धि और विचार शक्ति के सामने आज सारा संसार सिर झुका रहा है—"

सहसा एक बूढ़े अछूत ने उठकर पूछा—हम लोग भी उन्हीं ऋषियों की संतान हैं?

लीलाधर—निस्संदेह। तुम्हारी धमनियों में भी उन्हीं ऋषियों

का रक्त दौड़ रहा है। यद्यपि आज का निर्दयी, कठोर, विचार-हीन, संकुचित हिन्दू-समाज तुम्हें अवहेला की दृष्टि से देख रहा है, तथापि तुम किसी हिन्दू से नीच नहीं हो, चाहे वह अपने को कितना ही ऊँचा समझता हो।

बूढ़ा—तुम्हारी सभा हम लोगों की सुध क्यों नहीं लेती?

लीलाधर—हिन्दू-सभा का जन्म अभी थोड़े ही दिन हुए, हुआ है, और इस अल्प काल में उसने जितने काम किए हैं, उन पर उसे अभिमान हो सकता है। हिन्दू-जाति शताब्दियों के बाद गहरी नींद से चौंकी है, और अब वह समय निकट है, जब भारतवर्ष में कोई हिन्दू किसी हिन्दू को नीच न समझेगा, जब सब एक दूसरे को भाई समझेंगे। श्रीरामचन्द्र ने निषाद को छाती से लगाया था, शबरी के जूठे बेर खाए थे......

बूढ़ा—आप जब उन्हीं महात्माओं की संतान हैं, तो फिर ऊँच-नीच में क्यों इतना भेद मानते हैं?

लीलाधर—इसलिये कि हम पतित हो गए हैं—अज्ञान में पड़कर उन महात्माओं को भूल गए हैं।

बूढ़ा—अब तो आपकी निद्रा टूटी है, हमारे साथ भोजन करोगे?

लीलाधर—मुझे कोई आपत्ति नहीं है।

बूढ़ा—मेरे लड़के से अपनी कन्या का विवाह कीजिएगा?

चौबे—जब तक तुम्हारे जन्म-संस्कार न बदल जायँ, जब तक तुम्हारे आहार-व्यवहार में परिवर्तन न हो जाय, हम तुमसे विवाह का संबंध नहीं कर सकते। माँस खाना छोड़ो, मदिरा

पीना छोड़ो, शिक्षा ग्रहण करो, तभी तुम उच्च वर्ण के हिन्दुओं में मिल सकते हो।

बूढ़ा—हम कितने ही ऐसे कुलीन ब्राह्मणों को जानते हैं, जो रात-दिन नशे में डूबे रहते हैं, माँस के बिना कौर नहीं उठाते; और कितने ही ऐसे हैं, जो एक अक्षर भी नहीं पढ़े, पर आपको उनके साथ भोजन करते देखता हूँ। उनसे विवाह-संबंध करने में आपको कदाचित् इनकार न होगा। जब आप खुद अज्ञान में पड़े हुए हैं, तो हमारा उद्धार कैसे कर सकते हैं? आपका हृदय अभी तक अभिमान से भरा हुआ है। जाइए, अभी कुछ दिन और अपनी आत्मा का सुधार कीजिए। हमारा उद्धार आपके किए न होगा। हिन्दू समाज में रहकर हमारे माथे से नीचता का कलंक न मिटेगा। हम कितने ही विद्वान्, कितने ही आचारवान् हो जायँ, आप हमें यों ही नीच समझते रहेंगे। हिन्दुओं की आत्मा मर गई है, और उसका स्थान अहंकार ने ले लिया है। हम अब उस देवता की सरन जा रहे हैं, जिसके माननेवाले हमसे गले मिलने को आज ही तैयार हैं। वे यह नहीं कहते कि तुम अपने संस्कार बदल कर आओ। हम अच्छे हैं या बुरे, वे इसी दशा में हमें अपने पास बुला रहे हैं। आप अगर ऊँचे हैं, तो ऊँचे बने रहिए। हमें उड़ना नहीं आता। हम उन लोगों के साथ रहेंगे, जिनके साथ हमें उड़ना न पड़ेगा।

चौबे—एक ऋषि-संतान के मुँह से ऐसी बात सुनकर मुझे आश्चर्य हो रहा है। वर्ण-भेद तो ऋषियों ही का किया हुआ है। उसे तुम कैसे मिटा सकते हो?

बूढ़ा—ऋषियों को मत बदनाम कीजिए। यह सब पाखंड

आप लोगों का रचा हुआ है। आप कहते हैं, तुम मदिरा पीते हो; लेकिन आप मदिरा पीनेवालों की जूतियाँ चाटते हैं। आप हमसे मांस खाने के कारण घिनाते हैं, लेकिन आप गो-मांस खानेवालों के सामने नाक रगड़ते हैं। इसी लिये न कि वे आपसे बलवान् हैं? हम भी आज राजा हो जायँ, तो आप हमारे सामने हाथ बाँधे खड़े होंगे। आपके धर्म में वही ऊँचा है, जो बलवान् है, वही नीच है, जो निर्बल है। यही आपका धर्म है!

यह कहकर बूढ़ा वहाँ से चला गया, और उसके साथ ही और लोग भी उठ खड़े हुए। केवल चौबेजी और उनके दल-वाले मंच पर रह गए, मानो गान समाप्त हो जाने के बाद उसकी प्रतिध्वनि वायु में गूँज रही हो।

(४)

तबलीग़वालों ने जब से चौबेजी के आने की खबर सुनी थी, इस फ़िक्र में थे कि किसी उपाय से इन सब को यहाँ से दूर करना चाहिए। चौबेजी का नाम दूर दूर तक प्रसिद्ध था। जानते थे, यह यहाँ जम गया, तो हमारी सारी की-कराई मिहनत व्यर्थ हो जायगी। इसके कदम यहाँ जमने न पावें। मुल्लाओं ने उपाय सोचना शुरू किया। बहुत बाद-विवाद, हुज्जत और दलील के बाद निश्चय हुआ कि इस काफ़िर को क़त्ल कर दिया जाय। ऐसा सबाब लूटने के लिये आदमियों की क्या कमी? उसके लिये तो जन्नत का दरवाजा खुल जायगा, हूरें उसकी बलाएँ लेंगी, फ़रिश्ते उसके क़दमों की खाक का सूरमा बनाएँगे, रसूल उसके सर पर बरकत का हाथ रक्खेंगे, खुदावंद

करीम उसे सीने से लगाएँगे और कहेंगे—तू मेरा प्यारा दोस्त है। दो हट्टे-कट्टे जवानों ने तुरन्त बीड़ा उठा लिया।

रात के दस बज गए थे। हिन्दू-सभा के कैंप में सन्नाटा था। केवल चौबेजी अपनी रावटी में बैठे हिंदू-सभा के मंत्री को पत्र लिख रहे थे—यहाँ सबसे बड़ी आवश्यकता धन की है। रुपया, रुपया, रुपया! जितना भेज सकें, भेजिए। डेपुटेशन भेजकर वसूल कीजिए, मोटे महाजनों की जेब टटोलिए, भिक्षा माँगिए। बिना धन के इन अभागों का उद्धार न होगा। जब तक कोई पाठशाला न खुले, कोई चिकित्सालय न स्थापित हो, कोई वाचनालय न हो, इन्हें कैसे विश्वास आवेगा कि हिन्दू-सभा उनकी हितचिन्तक है। तबलीग़वाले जितना खर्च कर रहे हैं, उनका आधा भी मुझे मिल जाय, तो हिन्दू-धर्म की पताका फहराने लगे। केवल व्याख्यानों से काम न चलेगा। असीसों से कोई ज़िंदा नहीं रहता—

सहसा किसी की आहट पाकर वह चौंक पड़े। आँखें ऊपर उठाई, तो देखा, दो आदमी सामने खड़े हैं। पंडितजी ने शंकित होकर पूछा—तुम कौन हो, क्या काम है?

उत्तर मिला—हम इजराईल के फ़रिश्ते हैं। तुम्हारी रूह क़ब्ज करने आए हैं। हजरत इजराईल ने तुम्हें याद किया है।

पंडितजी यों बहुत ही बलिष्ठ पुरुष थे, उन दोनों को एक धक्के में गिरा सकते थे। प्रातःकाल तीन पाव मोहनभोग और दो सेर दूध का नाश्ता करते थे। दोपहर के समय पाव-भर घी दाल में खाते, तीसरे पहर दूधिया भंग छानते, जिसमें सेर-भर मलाई और आधसेर बादाम मिली रहती। रात को डटकर ब्यालू करते;

क्योंकि प्रातःकाल तक फिर कुछ न खाते थे। इस पर तुर्रा यह कि पैदल पग-भर भी न चलते थे। पालकी मिले, तो पूछना ही क्या, जैसे घर का पलंग उड़ा जा रहा हो। कुछ न हो, तो इक्का तो था ही; यद्यपि काशी में दो ही-चार इक्केवाले ऐसे थे, जो उन्हें देखकर कह न दें कि "इक्का खाली नहीं है।" ऐसा मनुष्य नर्म अखाड़े में पट पड़कर ऊपर वाले पहलवान को थका सकता था, चुस्ती और फुर्ती के अवसर पर तो वह रेत पर निकला हुआ कछुआ था।

पंडितजी ने एक बार कनखियों से दरवाज़े की तरफ देखा। भागने का कोई मौक़ा न था। तब उनमें साहस का संचार हुआ। भय की पराकाष्ठा ही साहस है। अपने सोंटे की तरफ़ हाथ बढ़ाया, और गरजकर बोले—निकल जाओ यहाँ से—

बात मुँह से पूरी न निकली थी कि लाठियों का वार पड़ा। पंडितजी मूर्छित होकर गिर पड़े। शत्रुओं ने समीप आकर देखा, जीवन का कोई लक्षण न था। समझ गए, काम तमाम हो गया। लूटने का तो विचार न था, पर जब कोई पूछने वाला न हो, तो हाथ बढ़ाने में क्या हर्ज ? जो कुछ हाथ लगा, ले-देकर चलते हुए।

(५)

प्रातःकाल बूढ़ा भी उधर से निकला, तो सन्नाटा छाया हुआ था—न आदमी न आदमज़ाद, छोलदारियाँ भी गायब ! चकराया, यह माजरा क्या है ! रात ही-भर में अलादीन के महल की तरह सब कुछ ग़ायब हो गया। उन महात्माओं में से एक भी नज़र नहीं आता, जो प्रातःकाल मोहनभोग उड़ाते और संध्या-समय भंग घोटते दिखाई देते थे। ज़रा और समीप जाकर पंडित

लीलाधर की रावटी में झाँका, तो कलेजा, सन-से हो गया। पंडितजी ज़मीन पर मुर्दे की तरह पड़े हुए थे। मुँह पर मक्खियाँ भिनक रही थीं। सिर के बालों में रक्त ऐसा जम गया था, जैसे किसी चित्रकार के ब्रश में रंग। सारे कपड़े लहूलुहान हो रहे थे। समझ गया, पंडितजी के साथियों ने उन्हें मारकर अपनी राह ली। सहसा पंडितजी के मुँह से कराहने की आवाज़ निकली। अभी जान बाक़ी थी। बूढ़ा तुरंत दौड़ा हुआ गाँव में गया, और कई आदमियों को लाकर पंडितजी को अपने घर उठवा ले गया।

मरहम-पट्टी होने लगी। बूढ़ा दिन-के-दिन और रात की-रात पंडितजी के पास बैठा रहता। उसके घरवाले उनकी सुश्रूषा में लगे रहते। गाँव वाले भी यथाशक्ति सहायता करते। इस बेचारे का यहाँ कौन अपना बैठा हुआ है? अपने हैं तो हम, बेगाने हैं तो हम। हमारे ही उद्धार के लिए तो बेचारा यहाँ आया था, नहीं तो यहाँ उसे क्या लेना था? कई बार पंडित जी अपने घर पर बीमार पड़ चुके थे। पर उनके घरवालों ने इतनी तन्मयता से कभी उनकी बीमारदारी न की थी। सारा घर, और घर ही नहीं, सारा गाँव उनका गुलाम बना हुआ था। अतिथि-सेवा उनके धर्म का एक अंग थी। सभ्य-स्वार्थ ने अभी उस भाव का गला नहीं घोटा था। साँप का मंत्र जानने वाला देहाती अब भी माघ-पूस की अँधेरी, मेघाच्छन्न रात्रि में मंत्र झाड़ने के लिये दस-पाँच कोस पैदल दौड़ता हुआ चला जाता है। उसे डबल फ़ीस और सवारी की ज़रूरत नहीं होती। बुड्ढा मल-मूत्र तक अपने हाथों उठाकर फेंकता, पंडितजी की घुड़कियाँ सुनता, सारे गाँव से दूध माँगकर उन्हें पिलाता। पर उसकी

त्योरियाँ कभी मैली न होतीं। अगर उसके कहीं चले जाने पर घरवाले लापरवाही करते, तो आकर सबको डाँटता।

महीने-भर के बाद पंडितजी चलने-फिरने लगे और अब उन्हें ज्ञात हुआ कि इन लोगों ने मेरे साथ कितना उपकार किया है। इन्हीं लोगों का काम था कि मुझे मौत के मुँह से निकाला नहीं तो मरने में क्या कसर रह गई थी? उन्हें अनुभव हुआ कि मैं जिन लोगों को नीच समझता था, और जिनके उद्धार का बीड़ा उठाकर आया था, वे मुझसे कहीं ऊँचे हैं। इस परिस्थिति में मैं कदाचित् रोगी को किसी अस्पताल भेजकर ही अपनी कर्तव्यनिष्ठा पर गर्व करता; समझता, मैंने दधीचि और हरिश्चंद्र का मुख उज्ज्वल कर दिया। उनके रोएँ-रोएँ से इन देव-तुल्य प्राणियों के प्रति आशीर्वाद निकलने लगा।

(६)

तीन महीने गुजर गए। न तो हिंदू-सभा ने पंडितजी की खबर ली, और न घरवालों ने। सभा के मुख-पत्र में उनकी मृत्यु पर आँसू बहाए गए, उनके कामों की प्रशंसा की गई, और उनका स्मारक बनाने के लिये चंदा खोल दिया गया। घरवाले भी रो-पीट कर बैठ रहे।

उधर पंडितजी दूध और घी खाकर चाक़-चौबंद हो गए। चेहरे पर खून की सुर्खी दौड़ गई, देह भर आई। देहात के जल-वायु ने वह काम कर दिखलाया, जो कभी मलाई और मक्खन से न हुआ था। पहले की तरह तैयार तो वह न हुए, पर फुर्ती और चुस्ती दुगनी हो गई। मोटाई का आलस्य अब नाम को भी न था। उनमें एक नए जीवन का संचार हो गया।

जाड़ा शुरू हो गया था। पंडितजी घर लौटने की तैयारियाँ कर रहे थे। इतने में प्लेग का आक्रमण हुआ, और गाँव के तीन आदमी बीमार हो गए। बुड्ढा चौधरी भी उन्हीं में था। घर वाले इन रोगियों को छोड़कर भाग खड़े हुए। वहाँ का दस्तूर था कि जिन बीमारियों को वे लोग देवी कोप समझते थे, उनके रोगियों को छोड़कर चले जाते थे। उन्हें बचाना देवतों से वैर लेना था, और देवतों से वैर करके कहाँ जाते? जिस प्राणी को देवतों ने चुन लिया, उसे भला वे उसके हाथों से छीनने का साहस कैसे करते? पंडितजी को भी लोगों ने साथ ले जाना चाहा; किंतु पंडितजी न गए। उन्होंने गाँव में रहकर रोगियों की रक्षा करने का निश्चय किया। जिस प्राणी ने उन्हें मौत के पंजे से छुड़ाया था, उसे इस दशा में छोड़कर वह कैसे जाते? उपकार ने उनकी आत्मा को जगा दिया था। बुड्ढे चौधरी ने तीसरे दिन होश आने पर जब उन्हें अपने पास खड़े देखा, तो बोला—महाराज, तुम यहाँ क्यों आ गए? मेरे लिये देवतों का हुकुम आ गया है। अब मैं किसी तरह नहीं रुक सकता। तुम क्यों अपनी जान जोखिम में डालते हो? मुझ पर दया करो, चले जाओ।

लेकिन पंडितजी पर कोई असर न हुआ। यह बारी-बारी से तीनों रोगियों के पास जाते, और कभी उनकी गिल्टियाँ सेंकते, कभी उन्हें पुराणों की कथाएँ सुनाते। घरों में नाज, बरतन आदि सब ज्यों-के-त्यों रक्खे हुए पंडितजी पथ्य बना-बनाकर रोगियों को खिलाते। रात को जब रोगी भी सो जाते, और सारा गाँव भायँ-भायँ करने लगता, तो पंडितजी को भाँति-भाँति के भयंकर जंतु

दिखाई देते। उनके कलेजे में धड़कन होने लगती। लेकिन वहाँ से टलने का नाम न लेते। उन्होंने निश्चय कर लिया था कि या तो इन लोगों को बचा ही लूँगा या इन पर अपने को बलिदान ही कर दूँगा।

जब तीन दिन सेंक-बाँध करने पर भी रोगियों की हालत न सँभली, तो पंडितजी को बड़ी चिंता हुई। शहर वहाँ से २० मील पर था। रेल का कहीं पता नहीं, रास्ता बीहड़ और साथी कोई नहीं। इधर यह भय कि अकेले रोगियों की न-जाने क्या दशा हो। बेचारे बड़े संकट में पड़े। अन्त को चौथे दिन, पहर रात रहे, वह अकेले ही शहर को चल दिए, और दस बजते-बजते वहाँ जा पहुँचे। अस्पताल से दवा लेने में बड़ी कठिनाई का सामना करना पड़ा। गँवारों से अस्पतालवाले दवाओं का मन-माना दाम वसूल किया करते थे। पंडितजी को मुफ्त क्यों देने लगे? डॉक्टर के मुंशी ने कहा—दवा तैयार नहीं है।

पंडितजी ने गिड़गिड़ाकर कहा—सरकार, बड़ी दूर से आया हूँ। कई आदमी बीमार पड़े हैं। दवा न मिलेगी, तो सब मर जायँगे।

मुंशी ने बिगड़कर कहा—क्यों सिर खाए जाते हो? कह तो दिया, दवा तैयार नहीं है, और न इतनी जल्द तैयार हो सकती है।

पंडितजी अत्यंत दीन भाव से बोले—सरकार, ब्राह्मण हूँ, आपके बाल-बच्चों को भगवान् चिरंजीवी करें, दया कीजिए। आपका अक़बाल चमकता रहे।

रिश्वती कर्मचारियों में दया कहाँ! वे तो रुपए के गुलाम

हैं। ज्यों-ज्यों पंडितजी उसकी खुशामद करते थे, वह और भी झल्लाता था। अपने जीवन में पंडितजी ने कभी इतनी दीनता न प्रकट की थी। उनके पास इस वक्त एक धेला भो न था। अगर वह जानते कि दवा मिलने में इतनी दिक्क़त होगी, तो गाँववालों से ही कुछ माँग-जाँचकर लाए होते। बेचारे हतबुद्धि-से खड़े सोच रहे थे कि अब क्या करना चाहिये? सहसा डॉक्टर साहब स्वयं बँगले से निकल आए। पंडितजी लपककर उनके पैरों पर गिर पड़े, और करुण स्वर में बोले—दीनबंधु, मेरे घर के तीन आदमी ताऊन में पड़े हुए हैं। बड़ा ग़रीब हूँ सरकार, कोई दवा मिले।

डॉक्टर साहब के पास ऐसे ग़रीब लोग नित्य आया करते थे। उनके चरणों पर किसी का गिर पड़ना, उनके सामने पड़े हुए आर्त-नाद करना, उनके लिये कुछ नई बातें न थीं। अगर इस तरह वह दया करने लगते, तो दया ही-भर को होते। यह ठाट-बाट कहाँ से निभता? मगर दिल के चाहे कितने ही बुरे हों, बातें मीठी-मीठी करते थे; पैर हटाकर बोले—रोगी कहाँ है?

पंडित—सरकार, वे तो घर पर हैं। इतनी दूर कैसे लाता?

डॉक्टर—रोगी घर हैं, और तुम दवा लेने आया है। कितना मजे का बात है। रोगी को देखे बिना कैसे दवा दे सकता है?

पंडितजी को अपनी भूल मालूम हुई। वास्तव में बिना रोगी को देखे रोग की पहचान कैसे हो सकती है। लेकिन तीन-तीन रोगियों को इतनी दूर लाना आसान न था। अगर गाँववाले उनकी सहायता करते, तो डोलियों का प्रबंध हो सकता था। पर वहाँ तो सब कुछ अपने ही बूते पर करना था, गाँववालों से

इसमें सहायता मिलने की कोई आशा न थी। सहायता की कौन कहे, वे तो उनके शत्रु हो रहे थे। उन्हें भय होता था कि यह दुष्ट देवतों से बैर बढ़ा कर हम लोगों पर न जाने क्या विपत्ति लावेगा। अगर कोई दूसरा आदमी होता, तो वह उसे कब का मार चुके थे। पंडितजी से उन्हें प्रेम हो गया था, इसीलिये छोड़ दिया था।

वह जवाब सुनकर पंडितजी को कुछ बोलने का साहस तो न होता था, पर कलेजा मजबूत करके बोले—सरकार, अब कुछ नहीं हो सकता?

डॉक्टर—अस्पताल से दवा नहीं मिल सकता। हम अपने पास से दाम लेकर दवा दे सकता है।

पंडित—यह दवा कितने की होगी सरकार?

डॉक्टर साहब ने दवा का दाम १०) बतलाया, और यह भी कहा कि इस दवा से जितना लाभ होगा, उतना अस्पताल की दवा से नहीं हो सकता। बोले—वहाँ पुराना दवाई रक्खा रहता है। गरीब लोग आता है, दवाई ले जाता है; जिसको जीना होता है, जीता है, जिसे मरना होता है, मरता है, हमसे कुछ मतलब नहीं। हम तुमको जो दवा देगा, वह सच्चा दवा होगा।

दस रुपए! इस समय पंडितजी को दस रुपए दस लाख जान पड़े। इतने रुपए वह एक दिन में भंग-बूटी में उड़ा दिया करते थे। पर इस समय तो धेले-धेले को मुहताज थे। किसी से उधार मिलने की आशा वहाँ कहाँ। हाँ, संभव है, भिक्षा माँगने से कुछ मिल जाय। लेकिन इतनी जल्द दस रुपए किसी उपाय से भी न मिल सकते थे। आध घंटे तक वह इसी उधेड़-

बुन में खड़े रहे। भिक्षा के सिवा दूसरा कोई उपाय न सूझता था, और भिक्षा उन्होंने कभी माँगी न थी! वह चन्दे जमा कर चुके थे, एक-एक बार में हजारों वसूल कर लेते थे; पर वह दूसरी बात थी। धर्म के रक्षक, जाति के सेवक, और दलितों के उद्धारक बनकर चंदा लेने में एक गौरव था, चंदा लेकर वह देनेवालों पर एहसान करते थे। पर यहाँ तो भिखारियों की भाँति हाथ फैलाना, गिड़-गिड़ाना और फटकारें सहनी पड़ेंगी। कोई कहेगा, इतने मोटे-ताजे तो हो, मिहनत क्यों नहीं करते, तुम्हें भीख माँगते शर्म भी नहीं आती? कोई कहेगा, घास खोद लाओ, मैं तुम्हें अच्छी मज़दूरी दूँगा। किसी को उनके ब्राह्मण होने का विश्वास न आवेगा। अगर यहाँ उनकी रेशमी अचकन और रेशमी साफ़ा होता, केसरिया रंगवाला दुपट्टा ही मिल जाता, तो वह कोई स्वाँग भर लेते। ज्योतिषी बनकर वह किसी धनी सेठ को फाँस सकते थे, और इस फन में वह उस्ताद भी थे। पर यहाँ वह सामान कहाँ—कपड़े-लत्ते तो सब लुट चुके थे। विपत्ति में कदाचित् बुद्धि भी भ्रष्ट हो जाती है। अगर वह मैदान में खड़े होकर कोई मनोहर व्याख्यान दे देते, तो शायद उनके दस-पाँच भक्त पैदा हो जाते। लेकिन इस तरफ़ उनका ध्यान ही न गया। वह सजे हुए पंडाल में, फूलों से सुसज्जित मेज़ के सामने, मंच पर खड़े होकर अपनी वाणी का चमत्कार दिखला सकते थे। इस दुरवस्था में कौन उनका व्याख्यान सुनेगा? लोग समझेंगे, कोई पागल बक रहा है।

मगर दोपहर ढली जा रही थी, अधिक सोच-विचार का अवकाश न था। यहीं संध्या हो गई, तो रात को लौटना असंभव

हो जायगा। फिर रोगियों की न जाने क्या दशा हो। वह अब इस अनिश्चित दशा में खड़े न रह सके। चाहे जितना तिरस्कार हो, कितना ही अपमान सहना पड़े, भिक्षा के सिवा और कोई उपाय न था।

वह बाजार में जाकर एक दूकान के सामने खड़े हो गए। पर कुछ माँगने की हिम्मत न पड़ी।

दूकानदार ने पूछा—क्या लोगे?

पंडितजी बोले—चावल का क्या भाव है?

मगर दूसरी दूकान पर पहुँच कर वह ज्यादा सावधान हो गए। सेठजी गद्दी पर बैठें हुए थे। पंडितजी आकर उनके सामने खड़े हो गए, और गीता का एक श्लोक पढ़ सुनाया। उनका शुद्ध उच्चारण और मधुर वाणी सुनकर सेठजी चकित हो गए; पूछा—कहाँ स्थान है?

पंडितजी—काशी से आ रहा हूँ।

यह कहकर पंडितजी ने सेठजी से धर्म के दसों लक्षण बतलाए, और श्लोक की ऐसी अच्छी व्याख्या की कि वह मुग्ध हो गया। बोला—महाराज, आज चलकर मेरे स्थान को पवित्र कीजिए।

कोई स्वार्थी आदमी होता, तो इस प्रस्ताव को सहर्ष स्वीकार कर लेता, लेकिन पंडितजी को तो लौटने की पड़ी थी। बोले—नहीं सेठजी, मुझे अवकाश नहीं है।

सेठ—महाराज, आपको हमारी इतनी ख़ातिरी करनी पड़ेगी।

पंडितजी सब किसी तरह ठहरने पर राज़ी न हुए, तो सेठ-जी ने उदास होकर कहा—फिर हम आपकी क्या सेवा करें?

कुछ आज्ञा दीजिए। आपकी वाणी से तो तृप्ति नहीं हुई। फिर कभी इधर आना हो, तो अवश्य दर्शन दीजिएगा।

पंडितजी—आपकी इतनी श्रद्धा है, तो अवश्य आऊँगा।

यह कहकर पंडितजी फिर उठ खड़े हुए। संकोच ने फिर उनकी जबान बंद कर दी। यह आदर-सत्कार इसीलिये तो है कि मैं अपना स्वार्थ-भाव छिपाए हुए हूँ। कोई इच्छा प्रकट की, और इनकी आँखें बदलीं। सूखा जबाब चाहे न मिले; पर यह श्रद्धा न रहेगी। वह नीचे उतर गए, और सड़क पर एक क्षण के लिये खड़े होकर सोचने लगे कि अब कहाँ जाऊँ? उधर जाड़े का दिन किसी विलासी के धन की भाँति भागा चला जाता था। वह अपने ही ऊपर झुँझला रहे थे—जब किसी से मागूँगा ही नहीं, तो कोई क्यों देने लगा? कोई क्या मेरे मन का हाल जानता है? वे दिन गए, जब धनी लोग ब्राह्मणों की पूजा किया करते थे। यह आशा छोड़ दो कि कोई महाशय आकर तुम्हारे हाथ में रुपए रख देंगे। वह धीरे-धीरे आगे बढ़े।

सहसा सेठजी ने पीछे से पुकारा—पंडितजी, ज़रा ठहरिए। पंडितजी ठहर गए। फिर घर चलने के लिये आग्रह करने आता होगा। यह तो न हुआ कि एक दस रुपए का नोट लाकर दे देता, मुझे घर ले जाकर न-जाने क्या करेगा।

मगर जब सेठजी ने सचमुच एक गिनी निकालकर उनके पैरों पर रख दी, तो उनकी आँखों में एहसान के आँसू छलक आए। हैं, अब भी सच्चे धर्मात्मा जीव संसार में हैं, नहीं तो यह पृथ्वी रसातल न चली जाती! अगर इस वक्त उन्हें सेठजी के कल्याण के लिये अपनी देह का सेर-आधार से रक्त भी देना

पड़ता, तो भी शौक़ से दे देते। गद्गद कंठ से बोले—इसका तो कुछ काम न था, सेठजी। मैं भिक्षुक नहीं हूँ, आपका सेवक हूँ।

सेठजी श्रद्धा-विनय-पूर्ण शब्दों में बोले—भगवन्, इसे स्वीकार कीजिए। यह दान नहीं, भेंट है। मैं भी आदमी पहचानता हूँ। बहुतेरे साधु-संत, योगी-यती, देश और धर्म के सेवक आते रहते हैं; पर न-जाने क्यों, किसी के प्रति मेरे मन में श्रद्धा नहीं उत्पन्न होती। उनसे किसी तरह पिंड छुड़ाने की पड़ जाती है। आपका संकोच देखकर मैं समझ गया कि आपका यह पेशा नहीं है। आप विद्वान् हैं, धर्मात्मा हैं; पर किसी संकट में पड़े हुए हैं। इस तुच्छ भेंट को स्वीकार कीजिए, और मुझे आशीर्वाद दीजिए।

(७)

पंडितजी दवाएँ लेकर घर चले, तो हर्ष, उल्लास और विजय से उनका हृदय उछला पड़ता था। हनुमान् भी संजीवनबूटी लाकर इतने प्रसन्न न हुए होंगे। ऐसा सच्चा आनंद उन्हें कभी प्राप्त न हुआ था; उनके हृदय में इतने पवित्र भावों का संचार कभी न हुआ था।

दिन बहुत थोड़ा रह गया था। सूर्यदेव अविरल गति से पश्चिम की ओर दौड़ते चले जाते थे। क्या उन्हें भी किसी रोगी को दवा देनी थी? वह बड़े वेग से दौड़ते हुए एक पर्वत की ओट में छिप गए। पंडितजी और भी फुर्ती से पाँव बढ़ाने लगे, मानो उन्होंने सूर्यदेव को पकड़ लेने की ठानी हो।

देखते-देखते अँधेरा छा गया। आकाश में दो-एक तारे दिखाई देने लगे। अभी दस मील की मंज़िल बाकी थी। जिस

तरह काली घटा को सिर पर मँडलाते देखकर गृहिणी दौड़-दौड़कर सुखावन समेटने लगती है, उसी भाँति लीलाधर ने दौड़ना शुरू किया। उन्हें अकेले पड़ जाने का भय न था। भय था अँधेरे में राह भूल जाने का। दाहने-बाएँ बस्तियाँ छूटती जाती थीं। पंडितजी को ये गाँव इस समय बहुत ही सुहावने मालूम होते थे कितने आनंद से लोग अलाव के सामने बैठे ताप रहे हैं !

सहसा उन्हें एक कुत्ता दिखलाई दिया। न-जाने किधर से आकर वह उनके सामने पगडंडी पर चलने लगा। पंडितजी चौंक पड़े; पर एक क्षण में उन्होंने कुत्ते को पहचान लिया। वह बूढ़े चौधरी का कुत्ता मोती था। वह गाँव छोड़कर आज इधर इतनी दूर कैसे आ निकला ? क्या वह जानता था कि पंडितजी दवा लेकर आ रहे होंगे, कहीं रास्ता न भूल जायँ ? कौन जानता है; पंडितजी ने एक बार मोती कहकर पुकारा, तो कुत्ते ने दुम हिलाई; पर रुका नहीं। वह इससे अधिक परिचय देकर समय नष्ट न करना चाहता था। पंडितजी को ज्ञान हुआ कि ईश्वर मेरे साथ हैं, वही मेरी रक्षा कर रहे हैं। अब उन्हें कुशल से घर पहुँचने का विश्वास हो गया।

दस बजते-बजते पंडितजी घर पहुँच गए।

❀ ❀ ❀ ❀ ❀

रोग घातक न था; पर यश पंडितजी को बदा था। एक सप्ताह में तीनों रोगी चंगे हो गए। पंडितजी की कीर्ति दूर-दूर तक फैल गई। वह यमदेवता से घोर संग्राम करके इन आदमियों को बचा लाए थे। उन्होंने देवतों पर भी विजय पा ली थी— असंभव को संभव कर दिखाया था। वह साक्षात् भगवान् थे।

उनके दर्शनों के लिये लोग दूर-दूर से आने लगे किंतु पंडितजी को अपनी कीर्ति से इतना आनंद न होता था, जितना रोगियों को चलते-फिरते देखकर।

चौधरी ने कहा—महाराज, तुम साच्छात भगवान् हो। तुम न आ जाते तो हम न बचते।

पंडितजी बोले—मैंने कुछ नहीं किया। यह सब ईश्वर की दया है।

चौधरी—अब हम तुम्हें कभी न जाने देंगे। जाकर अपने बाल-बच्चों को ले आओ।

पंडित—हाँ, मैं भी यही सोच रहा हूँ। तुमको छोड़कर अब नहीं जा सकता।

(८)

मुल्लाओं ने मैदान खाली पाकर आसपास के देहातों में खूब ज़ोर बाँध रक्खा था। गाँव-के-गाँव मुसलमान होते जाते थे। उधर हिन्दू-सभा ने सन्नाटा खींच लिया था। किसी की हिम्मत न पड़ती थी कि इधर आवे। लोग दूर बैठे हुए मुसलमानों पर गोला-बारूद चला रहे थे। इस हत्या का बदला कैसे लिया जाय, यही उनके सामने सबसे बड़ी समस्या थी। अधिकारियों के पास बार-बार प्रार्थना-पत्र भेजे जा रहे थे कि इस मामले की छान-बीन की जाय; और बार-बार यही जवाब मिलता था कि हत्याकारियों का पता नहीं चलता। उधर पंडितजी के स्मारक के लिये चन्दा भी जमा किया जा रहा था।

मगर इस नई ज्योति ने मुल्लाओं का रंग फीका कर दिया। यहाँ एक ऐसे देवता का अवतार हुआ था, जो मुर्दों को जिला

देता था, जो अपने भक्तों के कल्याण के लिये अपने प्राणों को बलिदान कर सकता था। मुल्लाओं के यहाँ यह सिद्धि कहाँ, यह विभूति कहाँ, यह चमत्कार कहाँ ? इस ज्वलंत उपकार के सामने उन्नत और अख़ूवत (भ्रातृभाव) की कोरी दलीलें कब ठहर सकती थीं ? पंडितजी अब वह अपने ब्राह्मणत्व पर घमंड करनेवाले पंडितजी न थे। उन्होंने शूद्रों और भीलों का आदर करना सीख लिया था। उन्हें छाती से लगाते हुए अब पंडितजी को घृणा न होती थी। अपना घर अँधेरा पाकर ही ये इसलामी दीपक की ओर झुके थे। जब अपने घर में सूर्य का प्रकाश हो गया, तो इन्हें दूसरों के यहाँ जाने की क्या ज़रूरत थी। सनातन-धर्म की विजय हो गई। गाँव-गाँव में मंदिर बनने लगे और शाम-सबेरे मंदिरों से शंख और घंटे की ध्वनि सुनाई देने लगी। लोगों के आचरण आप-ही-आप सुधरने लगे। पंडितजी ने किसी को शुद्ध नहीं किया। उन्हें अब शुद्धि का नाम लेते शर्म आती थी—मैं भला इन्हें क्या शुद्ध करूँगा पहले अपने को तो शुद्ध कर लूँ। ऐसी निर्मल, पवित्र आत्माओं को शुद्धि के ढोंग से अपमानित नहीं कर सकता।

यही मंत्र था, जो उन्होंने उन चांडालों से सीखा था; और इसी के बल से वह अपने धर्म की रक्षा करने में सफल हुए थे।

पंडितजी अभी जीवित हैं; पर अब सपरिवार उसी प्रांत में, उन्हीं भीलों के साथ, रहते हैं।

—श्रीयुत प्रेमचन्दजी।

———

तीसरा गुच्छ

भरत

भरत के विषय में महाराज दशरथ ने कैकेयी से कहा था कि:—

"रामादपि हि तं मन्ये धर्मतो बलवत्तरम् ।"

"धर्म की दृष्टि से हम भरत को राम से भी श्रेष्ठ समझते हैं!"

भरत के चरित्र को वे विलक्षण रूप से जानते थे तथापि रामचन्द्र के बन जाने पर उन्होंने भरत को त्याज्य पुत्र और अपनी अन्त्येष्टि क्रिया करने के अयोग्य समझा। इस प्रकार निर्दोष—बिलकुल निर्दोष कहना ठीक नहीं—और रामायण काव्य के आदर्श चरित्र भरत के भाग्य में यह क्या विडम्बना हुई इसकी आलोचना करते हुए हमें दुःख होता है। पिता ने अन्याय करके उन्हें त्याग दिया और कहाँ तक कहें, अयोध्या के जो सब दूत केकय राज्य में उन्हें लेने गये थे; उन्होंने भी भरत के अयोध्या-सम्बन्धी कुशल समाचार पूछने पर कुछ क्रूर व्यङ्ग ही से कहा था कि:—

"कुशलास्ते महाबाहो येषां कुशलमिच्छसि ।"

"आप जिनकी कुशल पूछते हैं वे कुशल हैं।" अर्थात् मानो भरत वास्तव में दशरथ, राम, लक्ष्मण आदि की कुशल नहीं चाहते थे, किन्तु हृदय से वे कैकेयी और मन्थरा ही की कुशल मनाते थे। या तो सब दूत आपस में मिल कर झूठ बोलते थे या निठुर बन व्यंग छोड़ते थे, इस जगह इस पद का और कुछ

अर्थ हो ही नहीं सकता। रामचन्द्र के वनवास होने पर अयोध्या के राजमहल में जो भयानक वितण्डावाद हुआ उसमें भी दो एक जगह इस निर्दोष राजकुमार पर अन्यायपूर्वक कटाक्ष किया गया। प्रजा रामचन्द्र के वनवास के समय—

"भरते सन्निबद्धाःस्मः सौनिके पशवो यथा।"

"हम लोग कसाई के निकट पशुओं की तरह भरत के सामने खड़े हैं"—यह कह कर आर्त नाद करती थी। इस साधु व्यक्ति को अपने अत्यन्त निकटस्थ सम्बन्धियों से भी बड़े अन्यायपूर्वक लाञ्छित होना पड़ा था। रामचन्द्र भरत को इतना अधिक प्यार करते थे कि उन्होंने वारंवार "मम प्राणैः प्रियतरः"—"हमारे प्राणों से भी प्यारे"—कह कर भरत का उल्लेख किया है। कौशल्या से रामचन्द्र ने कहा था कि "धर्मप्राण भरत की बातें देख कर तुम्हें अयोध्या छोड़ने में हमें कुछ भी चिन्ता नहीं होती।" पर इन रामचन्द्र ने भी भरत पर सन्देह के दो एक बाण न छोड़े हों, ऐसा नहीं है। उन्होंने सीता से कहा था कि, "तुम भरत के सामने हमारी प्रशंसा मत करना, क्योंकि ऋद्धियुक्त पुरुष दूसरे की प्रशंसा नहीं सुनना चाहता।" यह सन्देह क्षमा नहीं किया जा सकता। पिता दशरथ ने भी रामचन्द्र के राज्याभिषेक के समय भरत को सन्देह की दृष्टि से देखा था, उन्होंने राम को बुला कर कहा था कि, "हम चाहते हैं कि मामा के यहाँ भरत के रहते रहते ही तुम्हारा अभिषेक हो जाय; क्योंकि यद्यपि भरत धार्मिक और तुम्हारे पीछे पीछे चलनेवाला है तथापि मनुष्य का मन विचलित होते कितनी देर लगती है।" इक्ष्वाकुवंश की परम्परागत प्रथा के अनुसार राजसिंहासन बड़े भाई ही को

मिलता है, तो फिर ऐसी दशा में धार्मिकाग्रगण्य भरत पर ऐसा सन्देह करना मार्जनीय नहीं हो सकता। रामचन्द्र भरत के चरित्र की महिमा इतनी जानते थे तो भी वनवास के अन्त में भरद्वाज के आश्रम में उन्होंने हनुमान को यह कह कर भरत के पास भेजा कि "हमारे आने की खबर सुन कर भरत के मुख पर कुछ विकार होता है या नहीं, यह अच्छी तरह देखना।" यह सन्देह भी सर्वथा अमार्जनीय है। संसार में निरपराधियों को भी कई बेर दण्ड हुआ है पर भरत के समान आदर्श धार्मिक पर इस तरह के दण्ड देने का दृष्टान्त कहीं बिरले ही मिलेगा। लक्ष्मण तो वारंवार—

"भरतस्य वधे दोषं नाहं पश्यामि राघव।"

"भरत के वध करने में मैं कोई पाप नहीं समझता" कह कर उछल कूद करते थे किन्तु उसी भरत ने अश्रुरुद्ध-कण्ठ हो लक्ष्मण के विषय में कहा था कि—

"सिद्धार्थः खलु सौमित्रिर्यश्चन्द्रविमलोपमम्।
मुखं पश्यति रामस्य राजीवाक्षं महाद्युतिम्॥"

"लक्ष्मण, तू धन्य है जो राजीवलोचन रामचन्द्र के चन्द्रमा के समान उज्ज्वल मुख को देखता है।" भरत से सब लोगों के रुष्ट होने का कुछ न कुछ कारण अवश्य होगा? इतना बड़ा षड्यन्त्र रचा गया, क्या भरत ने परोक्ष में इसका किसी तरह अनुमोदन नहीं किया? अपने मामा युधाजित से परामर्श कर भरत दूर ही से डोर हिला कर कैकेयी को कठपुतली की तरह नहीं नचाते थे, इसका क्या प्रमाण है? इसी सन्देह की आशङ्का

करके भरत ने बेहोशी की दशा में कैकेयी से कहा था कि "जिस समय अयोध्या की सारी प्रजा रुद्धकण्ठ और सजलनेत्र हो हमारी ओर देखेगी, हम उसको सह नहीं सकेंगे।" कौशल्या भरत को बुला कर कटुवाक्य कहने लगी, उन कटु वचनों से भरत को घाव में सुई छेदने के समान पीड़ा हुई। दैव के चक्र में पड़ कर देवताओं के समान चरित्र-सम्पन्न भरत सारे संसार के सन्देह-भाजन हो लाञ्छित हुए। जब वे रामचन्द्र को मनाने के लिए बहुत सी सेना लेकर जा रहे थे तब निषादों का राजा गुहक मन में यह विचार कर कि वे रामचन्द्र का बुरा करने के लिए जाते हैं हाथ में लट्ठ लेकर रास्ते में खड़ा हो गया। यही क्यों, भरद्वाज ऋषि तक ने भय की दृष्टि से देखते हुए उनसे यह पूछा कि, "आप उस निष्पाप राजपुत्र के पास कोई पाप विचार कर तो नहीं जाते हैं?" इस प्रकार हर एक का समाधान करते करते भरत के प्राण कण्ठगत हो गये। भरत कैकेयी को 'मातृरूपे महामित्रे' कह कर सम्बोधन करते थे। वास्तव में कैकेयी माता के रूप में उनकी बड़ी भारी शत्रु ही थी। सारे संसार का भरत पर जो सन्देह की दृष्टि का विषबाण गिरता था उसका मूल कैकेयी ही थी।

किन्तु घटनावली कितना ही जटिल भाव क्यों न धारण करे, किन्तु भरत के अपूर्व भ्रातृ-स्नेह ने सारी जटिलता को सहज कर दिया था। रामचन्द्र को हमने अनेक अवस्थाओं में सुखी होते देखा है। जिस समय चित्रकूट की पुष्पवाटिका की शोभा और टूटे फूटे पत्थर के टुकड़ों से छाई हुई अधित्यका भूमि में अधिष्ठित पर्वत के शिखर और रंग-बिरंगे फूलों को देख कर राम-

चन्द्र ने सीता से कहा, "इस स्थान पर तुम्हारे संग विचर कर हम अयोध्या के राजपद को तुच्छ समझते हैं।" उस समय दम्पति का निर्मल आनन्दमय चित्र हमें बड़ा ही सुन्दर और सुखप्रद बोध होता है। रामचन्द्र-रूपी आकाश कभी बादलों से घिर जाता और कभी स्वच्छ हो जाता था। किन्तु भरत का सदा ही खिन्न चित्र मर्मान्तिक करुणा के योग्य था। जिस समय भरत रामचन्द्र को लौटाने के लिये आये, उस समय रामचन्द्र उनकी जटिल, कृश और विवर्ण मूर्ति को देख कर चकित हो गये और उन्हें बड़ी कठिनाई से पहचाना।

भरत का चित्र प्रदर्शन करने के अभिप्राय से जिस समय कवि-गुरु ने पहले ही पहल पर्दा उठाया उसी समय उनकी मूर्ति विषण्णतापूर्ण थी। वे इस बुरे स्वप्न को देख कर प्रातःकाल उठे कि नर्तकियाँ उनके प्रमोद के लिए उनके सामने नृत्य कर रही हैं, सखा लोग व्यग्रचित्त होकर कुशल पूछ रहे हैं और भरत का चित्त भारी और मुख श्रीहीन है। अयोध्या की विषम विपत्ति के पूर्वाभास ने मानों उनके मन पर अधिकार कर लिया था और वे किसी प्रकार स्वस्थ नहीं होते थे। इसी समय उनको लेने के लिए अयोध्या से दूत आये। व्यग्र कण्ठ से भरत ने दूतों से अयोध्या के सब लोगों की अलग अलग कुशल पूछी। दूतों ने दो अर्थ वाला उत्तर दिया कि:—

"कुशलास्ते महाबाहो येषां कुशलमिच्छसि।"

"हे महाबाहो, आप जिनकी कुशल पूछते हैं वे कुशल हैं।" किन्तु पिछली रात का बुरा स्वप्न और दूतों की व्यग्रता ये दोनों

उन्हें एक समस्या के समान समझ पड़े। इन दो घटनाओं को दुश्चिन्ता के सूत में बाँध कर वे अत्यन्त ही दुःखी हुए:—

"बभूव ह्यस्य हृदये चिंता सुमहती तदा।
त्वरया चापि दूतानां स्वप्नस्यापि च दर्शनात्॥"

बहुत से स्थान, नदी-नाले और झाड़ियों को पार करके भरत दूर ही से अयोध्या की चिरश्यामल वृक्षावली को देख सकते थे और डरी हुई जबान से उन्होंने सारथी से पूछा कि, "यह अयोध्या तो नहीं मालूम होती। इस नगरी का वह चिरश्रुत तुमुल शब्द क्यों नहीं सुनाई पड़ता? वेदपाठी ब्राह्मणों का कण्ठस्वर और काम में लगे हुए स्त्री-पुरुषों का कोलाहल भी बिलकुल नहीं सुनाई देता। जिस प्रमोद-उद्यानों में स्त्री-पुरुष अकेले विचरते थे, वे आज सूने पड़े हैं। सड़कें, चन्दन और जल के छिड़काव से पवित्र नहीं होती। सड़कों पर रथ, हाथी, घोड़े कुछ भी नहीं हैं। जिसके सब दरवाजे खुले हैं ऐसी श्रीहीन राजपुरी मानो व्यङ्ग कर रही है, यह तो अयोध्या नहीं है, मानो अयोध्या का वन है।"

वास्तव में अयोध्या श्रीहीन हो गई थी। रामचन्द्र-रूपी चन्द्र के बिना अयोध्या के सुन्दर बाजारों की शोभा बिलकुल नष्ट हो गई थी। तीनों लोकों में यशस्वी महाराज दशरथ ने पुत्र-शोक में अपने प्राण त्याग दिये थे। अभिषेक के उत्सव से आनन्दित बड़े राजकुमार मुनियों के वेश में वन को चले गये थे और हाथों के कङ्कण, कड़े और अन्य आभूषण सखियों को वितरण कर अयोध्या की राजवधू तपस्विनियों के वेश में अपने

स्वामी के संग हो ली थी। जिनकी दोनों लम्बी और सुडौल भुजाएँ अङ्गद * प्रभृति सब आभूषण धारण करने के योग्य थीं, ऐसे "स्वर्णच्छवि" लक्ष्मण, भाई और भाभी के पैरों के पीछे पीछे जा रहे थे। अयोध्या में घर घर इन तीनों देवताओं के लिए करुणा के आँसुओं की नदी बह रही थी। हा, अब वे बन में रहते हैं और राजमहल त्याग दिया है। सुमन्त्र ने ठीक ही कहा था कि सारी अयोध्या पुत्रहीना कौशल्या की दशा को प्राप्त हुई है।

किन्तु भरत यह सब कुछ नहीं जानते थे। उन्होंने चुपचाप प्रतिहारियों का अभिवादन स्वीकार किया और बड़े उत्कण्ठित चित्त से पिता के महल में गये पर वहाँ पिता को नहीं पाया।—

"राजा भवति भूयिष्टमिहाम्बाया निवेशने।"

"कैकेयी के महल में महाराज अनेक समय रहते थे" अतएव भरत पिता को ढूँढ़ते ढूँढ़ते माता के महल में पहुँचे।

सद्योविधवा कैकेयी आनन्द में फूली नहीं समाती थी और वह पतिघातिनी पुत्र के भावी अभिषेक के आनन्द के चित्र को मन ही मन में खींच कर सुखी हो रही थी। भरत को देख कर वह बड़ी ही प्रसन्न हुई। जब भरत ने पिता के सम्बन्ध में पूछा तो वह बोली—

"या गतिः सर्वभूतानां तां गतिं ते पिता गतः।"

"सब प्राणियों की जो गति होती है वही गति तुम्हारे पिता

---

* अङ्गद = एक आभूषण-विशेष का नाम है।

की हुई है।" इस समाचार को सुन कर कुठार से काटे गये वन-वृक्ष की तरह भरत पृथिवी पर गिर पड़े।

"क्व स पाणिः सुखस्पर्शस्तातस्याक्लिष्टकर्मणः।"

"अक्लिष्टकर्मी पिता के हाथ के स्पर्श का वह सुख अब कहाँ मिलेगा ?" यह कह कर भरत रोने लगे। राजा के बिना राजशय्या उन्हे चन्द्रमा के बिना आकाश के समान दिखाई पड़ी। उन्होंने कैकेयी से कहा "राम कहाँ हैं ? इस समय पिता के न होने पर जो हमारे पिता, जो हमारे बन्धु और मैं जिनका दास—ऐसे रामचन्द्र के देखने के लिये हमारा प्राण व्याकुल हो रहा है।" राम, लक्ष्मण और सीता को वनवास हुआ सुन कर भरत क्षणभर के लिये मूर्ति के समान खड़े रह गये और भाई के चरित्र में आशङ्का करके बोले कि, "राम ने क्या किसी ब्राह्मण का धन छीन लिया था, क्या उन्होंने दीन-दुखियों को सताया था अथवा परस्त्री में आसक्त हो गये थे, जिससे उन्हें निर्वासन का दण्ड मिला ?" अन्तिम प्रश्न के उत्तर में कैकेयी ने कहा—

"न रामः परदारान् स चक्षुर्भ्यामपि पश्यति।"

"रामचन्द्र पराई स्त्रियों को आँखों से भी नहीं देखते।" अन्त में भरत की उन्नति और राजश्री की कामना से कैकेयी ने जो सब लीला रची थी, उसे कह कर पुत्र को प्रसन्न करने की प्रतीक्षा में उनके मुख की ओर देखने लगी।

घने बादलों ने मानो आकाश को घेर लिया था। धर्म-प्राण विश्वस्त भ्राता क्षणभर तक इस दुःसह संवाद का मर्म समझने में समर्थ नहीं हुए। उन्होंने माता को जो धिक्कार दी उसे हम

उसकी महादुर्गति का स्मरण कर सम्पूर्ण रूप से समयोपयोगी समझते हैं। "तू धार्मिकवर अश्वपति की कन्या नहीं है, उनके वंश में तू राक्षसी पैदा हुई है। तूने हमारे धर्मवत्सल पिता का नाश कर दिया है और भाइयों को गली गली का भिखमंगा बना दिया है, तू नरक में पड़। जिस समय कातरकण्ठ होकर भरत ये बातें कह रहे थे, उस समय दूसरे महल से कौशल्या ने सुमित्रा से कहा, "भरत की आवाज़ सुनाई पड़ती है, वह आ गया है, उसे हमारे पास बुला।" कृशाङ्गी सुमित्रा ने भरत को बुलाया, तब कौशल्या ने कहा, "तुम्हारी माता तुम को लेकर निष्कण्टक राज्य भोगे, तुम हमको राम के पास पहुँचा दो" इन कटु वचनों से मर्मविद्ध होकर भरत ने कौशल्या के सामने अनेक शपथें खाईं कि वे इस मामले के रहस्य को रत्ती भर भी नहीं जानते। अपनी बात को अनेक प्रकार से समझाने की चेष्टा कर दारुण शोक और लज्जा के मारे भरत का चेहरा कुम्हला गया और वे अपने को बारंबार कोसने और दोषी ठहराने लगे और जोर से बोलने और दारुण शोक के कारण मूर्च्छित हो कर पृथ्वी पर गिर पड़े। करुणामयी अम्बा कौशल्या धर्म-भीरु कुमार के मन के भाव को समझ गई और उन्हें गोद से लगा कर रोने लगी।

भरत का शोक और उदासीनता क्रम से बढ़ चली। श्मशान भूमि में मृत पिता के गले से लगकर वे रोते रोते बोले, "हे पिता, अपने दोनों प्यारे पुत्रों को बन भेज कर आप कहाँ जाते हो?" सजल-नेत्र और शोकविमूढ़ राजकुमार को वशिष्ठ ने ताड़ना करके पिता की अन्त्येष्टि क्रिया कराने में प्रवृत्त किया। शोक से विह्वल होकर भरत एक बेर मूर्च्छित होकर गिर पड़े।

प्रातःकाल बन्दीजन भरत की स्तुति गाने लगे, उस समय भरत ने पागल की तरह दौड़ कर उन्हें मना कर दिया कि "इक्ष्वाकुवंश की प्रथा के अनुसार सिंहासन बड़े राजकुमार को मिलता है, तुम किसकी वंदना कर रहे हो?" राजा की मृत्यु के चौदहवें दिन वशिष्ठ आदि मंत्रियों ने भरत से राज्य-ग्रहण करने का अनुरोध किया। भरत बोले, "रामचन्द्र राजा बनेंगे। हम अयोध्या की सारी प्रजा को लेकर उन्हें पैरों पड़ कर मना लावेंगे, यदि वे न लौटें तो हम भी चौदह वर्ष बन में रहेंगे"

शत्रुघ्न मन्थरा को मारने और कैकेयी को ताड़ना देने लगे, किन्तु क्षमा के अवतार भरत जी ने उन्हें मना कर दिया।

सब अयोध्यावासी रामचन्द्र को लौटाने के लिए चल पड़े। शृङ्गवेरपुर में गुहक के साथ भरत का साक्षात्कार हुआ। गुहक ने भरत पर पहले सन्देह किया था किन्तु भरत के मुख को देख कर उसे उनके हृदय का भाव जानने में देर नहीं लगी। इंगुदी के वृक्ष के नीचे रामचन्द्र ने तृणशैया पर कुछ जलपान कर एक रात्रि व्यतीत की थी, वह तृणशैया रामचन्द्र के विशाल बाहुओं की रगड़ से दब गई थी और सीता के वस्त्रों से गिरे हुए स्वर्णबिन्दु तृण पर दिखाई देते थे। यह दृश्य देखते २ भरत मौन हो एकटक खड़े रह गये, गुहक बातें करता था, भरत सुन नहीं सकते थे। भरत को संज्ञाशून्य देख कर शत्रुघ्न उनसे लिपट कर रोने लगे, रानियाँ और मंत्री लोग शोक से विह्वल हो गये। बहुत यत्न से जब भरत होश में आये तब उन्होंने नेत्रों में जल भर कर कहा "क्या यह उन्हीं की शैया है—जिन्हें सदा आकाशस्पर्शी राज-प्रसाद में रहने का अभ्यास है—जिनके गृह पुष्पमाला, चित्र

और चन्दन से सदा चर्चित रहते हैं—जिनके महल का शिखर नृत्य-शील पक्षियों और मोरों की विहारभूमि है और गाने बजाने के शब्द से सदा मुखरित रहता है और जिसकी स्वर्ण की दीवारों पर आदर्श चित्रकारी का काम किया हुआ है? उसी गृह के स्वामी इंगुदी के नीचे रहे हैं। ये बातें स्वप्न सी मालूम पड़ती हैं, ये विश्वास के योग्य नहीं हैं। हम क्या मुँह लेकर राजवस्त्र धारण करेंगे? भोग-विलास की वस्तुओं से हमें प्रयोजन नहीं, हम आज ही से जटा-वल्कल धारण करेंगे, भूमि पर सोवेंगे और फल-फूल खाकर अपना जीवन व्यतीत करेंगे।"

इस प्रकार जटा-वल्कल-धारी शोकविमूढ़ राजकुमार भरद्वाज मुनि के आश्रम में जाकर रामचन्द्र का पता लगाने लगे। सर्वज्ञ ऋषि ने भी पहले सन्देह प्रगट कर भरत के मन को पीड़ा पहुँचाई थी। एक रात्रि भरद्वाज के आश्रम में आतिथ्य-सत्कार ग्रहण कर मुनि के निदेशानुसार राजकुमार ने चित्रकूट की ओर प्रस्थान किया। भरद्वाज ने भरत के डेरों में आकर रानियों को देखना चाहा। भरत ने इस प्रकार माताओं का परिचय दिया। "भगवन्, यह जो शोक और निराहार से क्षीण देह, सौम्य मूर्ति और देवताओं की तरह दिखलाई पड़ती हैं, वह हमारे अग्रज रामचन्द्र की माता हैं, वह जो बायें हाथ का सहारा लगाये उदास खड़ी और बन में सूखे हुए कर्णिकार-पुष्पों के पेड़ की तरह शीर्णाङ्ग हैं, लक्ष्मण और शत्रुघ्न की जननी सुमित्रा हैं और उनके पास ही वह, जिन्होंने अयोध्या की राजलक्ष्मी को बिदा कर दिया है, वह पतिघातिनी और सारे अनर्थ की मूल, वृथा प्रज्ञामानिनी और राज्यकामुका इस अभागे की माता हैं।" यह कहते

कहते भरत के दोनों नेत्रों से जल बहने लगा और क्रुद्ध सर्प की तरह उन्होंने एक बार अश्रु-पूर्ण चक्षुओं से माता की ओर देखा।

चित्रकूट के पास पहुँच कर माताओं और मंत्रियों को लिये हुए भरत ने रथ त्याग दिया और पैदल चलने लगे।

उस समय रमणीय चित्रकूट पर अर्क और केतकी के पुष्प खिल रहे थे और आम और लोध के पके हुए फल डालियों पर लटक रहे थे। चित्रकूट पर्वत पर कहीं टूटे फूटे पत्थर के टुकड़े पड़े हुए थे, कहीं नीचे की अधित्यका-भूमि पुष्पों के लगने से रमणीय बगीचों की तरह सुन्दर मालूम होती थी, कहीं पर्वत के गात्र से एक शैलशिखर ऊँचा उठ कर आकाश ही का चुम्बन कर रहा था, पास ही मन्दाकिनी कभी किनारे पर आ जाती और कभी उसकी छोटी सी धारा वृक्षों की नील आभा ही में विलुप्त हो जाती थी। कहीं मन्दाकिनी की लहरें वायु के वेग से इस प्रकार फर्राटें ले रही थीं मानों सुन्दरियों के शरीर से वस्त्र ही उड़ रहे हों और कहीं झरनों के प्रवाह में पर्वती फूल अपनी ही छटा दिखा रहे थे। इस दृश्यों को देख कर रामचन्द्र ने सीता से कहा, "राज्यनाश और सुहृद्विरह हमारी समझ में हमें कोई पीड़ा नहीं दे रहा है। हम इस पर्वत की दृश्यावली का निर्मल आनन्द सम्पूर्ण रूप से उपभोग कर सकते हैं।"

इस बात के समाप्त होते न होते आकाश सहसा बड़े भारी शब्द से गूँजने लगा, धूल से दशों दिशाएँ छा गईं और तुमुल शब्द से पशु-पक्षी चारों ओर भागने लगे। रामचन्द्र ने त्रस्त होकर लक्ष्मण से जिज्ञासा की "देखो, क्या कोई राजा या राजपुत्र इस बन में शिकार खेलने आया है? अथवा किसी

भीषण जन्तु के आने से इस सौम्य-निकेतन की शान्ति इस प्रकार भङ्ग हो रही है ?" लक्ष्मण दीर्घपुष्पित शाल वृक्ष पर चढ़ कर इधर उधर देखने लगे तो उन्हें पूर्व दिशा में फौज दिखाई पड़ी। उसे देख कर वे बोले, "अग्नि बुझा दो, सीता को कहीं गुफा में छिपा दो और अस्त्र-शस्त्र लेकर सुसज्जित हो जाओ।" "किसी की फौज आ रही है, क्या कुछ समझ में आया ?" लक्ष्मण ने इस प्रश्न का उत्तर दिया कि "पास ही यह जो बड़ा वृक्ष दिखाई पड़ता है उसके पत्तों में से भरत की कोविदारयुक्त * रथ की ध्वजा दिखाई पड़ती है। अभिषेक होने से उनका मनोरथ पूर्ण नहीं हुआ, अपने राज्य की शोभा को निष्कण्टक करने के लिए भरत हम लोगों का वध करने के लिए आये हैं, आज हम इस सब अनर्थ के मूल भरत का वध करेंगे।

रामचन्द्र बोले, "भरत हमें लौटाने के लिये आये हैं। सब बातों को अच्छी तरह जान कर हम से सदा स्नेह करनेवाले, हमारे प्राणों से भी प्यारे भरत स्नेहार्द्र हृदय से पिता को प्रसन्न कर हमें लेने के लिये आये हैं, तुम उन पर अन्याय करने का क्यों सन्देह करते हो ? भरत ने कभी हमारे साथ बुराई नहीं की, तुम उन्हें क्यों ऐसे क्रूर वचन कहते हो ? यदि राज्य के लोभ से तुमने ऐसा किया है तो भरत से कह कर निश्चय ही हम राज्य तुम्हें दिला देंगे।" धर्म-शील भ्राता की इन बातों से लक्ष्मण बड़े ही लज्जित हुए।

थोड़ी देर बाद ही भरत आ उपस्थित हुए। उपवास से

---

* भरत की फौज के झंडे का निशान 'कोविदार' था।

कृश और शोक की जीवन्त मूर्ति देवोपम भरत रामचन्द्र को तृण के ऊपर बैठे देख कर बालक की तरह फूट फूट कर रोने और कहने लगे कि 'जिनके मस्तक पर स्वर्णछत्र शाभा पाता था, उस राजश्री से उज्ज्वल ललाट पर आज जटाजूट कैसे बँधे हैं? हमारे अग्रज का शरीर सदा चन्दन और अगर से मार्जित होता था, आज वह अङ्गराग से रहित कान्ति धूल-धूसरित हो रही है। जो सारे विश्व के प्राणियों के आराधना वस्तु थे, वे ही आज बन बन में भिखमंगे की तरह टकराते फिरते हैं। हमारे लिये ही यह सब कष्ट आप भोग रहे हैं। हमारे इस लोकगर्हित और नृशंस जीवन को धिक्कार है।" इस प्रकार कहते और उच्च स्वर से रुदन करते हुए भरत रामचन्द्र के पैरों में जाकर गिर पड़े। इन दोनों त्यागी महापुरुषों का मिलाप बड़ा ही करुण है। भरत का मुख सूख गया था, उनके माथे पर जटाजूट बँधे थे और शरीर पर वे चीर धारण किये हुए थे। रामचन्द्र ने विवर्ण और कृश भरत को कठिनता से पहचाना। उन्होंने बड़े आदरपूर्वक भरत को जमीन से उठा लिया और उनके शिर को सूँघ और हृदय से लगा कर बोले, "वत्स, तुम्हारा यह वेश क्यों? तुम्हें इस वेश से बन में आना उचित नहीं था।"

भरत बड़े भाई के चरणों में लोट गये और बोले, "हमारी जननी घोर नरक में गिर पड़ी है, आप उसकी रक्षा कीजिये, मैं आपका भाई हूँ, शिष्य हूँ और दासानुदास हूँ, आप मुझ पर प्रसन्न हो अयोध्या चल कर सिंहासन पर बैठिये।" बहुत बातें हुईं और बड़ा तर्क-वितर्क हुआ—भरत बोले, हम

चौदह वर्ष तक बन में वास करेंगे, महाराज की प्रतिज्ञा पालन करना हमारा कर्तव्य है।" जब राम को किसी प्रकार अयोध्या चलने के लिए राजी न कर सके तो भरत अनशन व्रत धारण कर उनकी कुटी के द्वार पर धन्ना देकर पड़ गये। भूमि पर लोटे हुए भरत को रामचन्द्र ने आदरपूर्वक उठा कर अपनी पादुकाएँ प्रदान कीं। भाई के पद-रज से विभूषित पादुकाएँ भरत के जटाजूट को शोभित कर उनके शिर पर मुकुट के समान देदीप्यमान हो रही थीं। सहस्रों आभूषणों से जो शोभा नहीं आ सकती, इन पादुकाओं ने भरत को वही अपूर्व राजश्री प्रदान की। भरत ने बिदा होते समय कहा, "चौदह वर्ष तक हम आपकी प्रतीक्षा में इन पादुकाओं की आज्ञा लेकर राज्य का काम चलावेंगे; यदि इतने समय में आप नहीं आये तो अग्नि में हम अपना प्राण होम देंगे।" अयोध्या के समीप पहुँच कर भरत बोले "अयोध्या वह अयोध्या नहीं है, हम इस बिना सिंह की गुफा में प्रवेश नहीं कर सकेंगे।" नन्दीग्राम में राजधानी बनाई गई पर वह राजधानी नहीं ऋषि का आश्रम था। मन्त्री लोग जटा-वल्कल-धारी और फलमूलाहारी राजा के पास बहुमूल्य वस्त्र धारण कर कैसे बैठेंगे यह विचार कर उन सब ने कषाय वस्त्र पहनना आरम्भ कर दिया। सचिव-वृन्द की सहायता से इस कषाय-वस्त्रधारी, व्रत और उप-वास से कृशांग और त्यागी राजकुमार ने रामचन्द्र की पादु-काओं के ऊपर छत्र धारण कर चौदह वर्ष तक राज्य कर प्रजा का पालन किया।

भरत की यह विवरण मूर्ति राम के चित्त में काँटे की तरह

बिंध गई थी। जिस समय सीता के हरण होने पर वे पम्पा के किनारे उन्मत्त की तरह घूम रहे थे उस समय उन्होंने कहा था "इस पम्पातीर की रमणीय दृश्यावली सीता के विरह और भरत के दुःख में हमें रमणीय नहीं मालूम होती।" और एक दिन लङ्का में रामचन्द्र ने सुग्रीव से कहा था "बन्धु भरत के समान भाई इस संसार में कहाँ मिलेगा?"

जब रामचन्द्र लौट कर अयोध्या को आये तब भरत उन्हीं पादुकाओं को अपने हाथों से उनके चरणों में पहिरा कर कृतार्थ हुए और रामचन्द्र के चरणों में प्रणाम करके बोले, "देव आप इस अयोग्य के हाथ में जो राज्यभार छोड़ गये थे उसे ग्रहण कीजिये, चौदह वर्ष में राजकोश में दस गुना धन बढ़ गया है।"

रामायण में यदि कोई चरित्र ठीक आदर्श समझ कर ग्रहण किया जा सकता है तो वह एक मात्र भरत ही का चरित्र है। सीता ने लक्ष्मण से जो कटु वचन कहे थे वे क्षमा के योग्य नहीं हैं। रामचन्द्र के वालिवध आदि अनेक कार्यों का समर्थन नहीं किया जा सकता। लक्ष्मण की बातें तो कई बार बड़ी रूखी और दुर्विनीत हुई हैं। कौशल्या ने दशरथ से कहा था, "कोई कोई जलजन्तु जिस प्रकार अपनी सन्तान भक्षण कर जाते हैं तुमने भी उसी प्रकार किया है।" किन्तु भरत के चरित्र में एक भी दोष नहीं। रामचन्द्र की पादुकाओं पर स्वर्णछत्र धारण करनेवाले जटावल्कलधारी इस राजर्षि का चित्र रामायण में एक अद्वितीय सौन्दर्य धारण कर रहा है। दशरथ ने सत्य ही कहा था कि—

"रामादपि हि तं मन्ये धर्मतो बलवत्तरम् ।"

"धर्म की दृष्टि से हम राम की अपेक्षा भरत को अधिक बलवान् समझते हैं ।"

हम कैकेयी के सहस्रों दोषों को, जब कि हम देखते हैं कि वह ऐसे सुपुत्र की गर्भधारिणी थी, क्षमा के योग्य समझते हैं । हम निषादाधिपति गुहक के स्वर में स्वर मिला एक वाक्य से यही कहेंगे कि—

"धन्यस्त्वं न त्वया तुल्यं पश्यामि जगतीतले ।
अयत्नादागतं राज्यं यतस्त्वं त्यक्तुमिच्छसि ॥"

"तुम धन्य हो जो बिना यत्न से आये हुए राज्य को छोड़ना चाहते हो, इस संसार में तुम्हारे समान और कोई नहीं दिखाई देता है ।"

चौथा गुच्छ

महाकवि माघ का प्रभात-वर्णन

रात अब बहुत ही थोड़ी रह गई है। सुबह होने में कुछ ही कसर है। ज़रा सप्तर्षि नाम के तारों को तो देखिए। वे आसमान में लम्बे पड़े हुए हैं। उसका पिछला भाग तो नीचे को झुका सा है और अगला ऊपर को। वहीं, उनके अधोभाग में, छोटा सा ध्रुव तारा कुछ कुछ चमक रहा है। सप्तर्षियों का आकार गाड़ी से सदृश है—ऐसी गाड़ी के सदृश जिसका जुवाँ ऊपर को उठ गया हो। इसी से उनके और ध्रुव-तारा के दृश्य को देखकर श्रीकृष्ण के बालपन की एक घटना याद आ जाती है। शिशु श्रीकृष्ण को मारने के लिए एक बार गाड़ी का रूप बना कर शकटासुर नाम का एक दानव उनके पास आया। श्रीकृष्ण ने पालने में पड़े ही पड़े, खेलते खेलते, उसे एक लात मार दी। उसके आघात से उसका अग्रभाग ऊपर को उठ गया और पश्चाद्भाग खड़ा ही रह गया। श्रीकृष्ण उसके तले आ गये। वही दृश्य इस समय सप्तर्षियों की अवस्थिति का है। वे तो कुछ उठे हुए से लम्बे पड़े हैं; छोड़ा सा ध्रुव उनके नीचे चमक रहा है।

पूर्व-दिशा-रूपिणी स्त्री की प्रभा इस समय बहुत भली मालूम होती है। वह हँस सी रही है। वह यह सोचती सी है कि इस चन्द्रमा ने जब तक मेरा साथ दिया—जब तक यह मेरी सङ्गति में रहा—तब तक उदित ही नहीं रहा, इसकी दीप्ति भी खूब बढ़ी। परन्तु, देखो, वही अब पश्चिम-दिशा-रूपिणी स्त्री की

तरफ़ जाते ही (हीन-दीप्ति होकर) पतित हो रहा है। इसी से पूर्व दिशा, चन्द्रमा को देख देख, प्रभा के बहाने ईर्षा से मुसका सी रही है। परन्तु चन्द्रमा को उसके हँसी-मज़ाक की कुछ भी परवा नहीं। वह अपने ही रङ्ग में मस्त मालूम होता है। अस्त समय होने के कारण, उसका बिम्ब तो लाल है पर किरणें उसकी पुराने कमल की नाल के कटे हुए टुकड़ों के समान सफेद हैं स्वयं सफेद होकर भी बिम्ब की अरुणता के कारण वे कुछ कुछ लाल भी हैं। कुङ्कुम-मिश्रित सफेद चन्दन के सदृश उन्हीं लालिमा मिली हुई सफेद किरणों से चन्द्रमा पश्चिम-दिग्वधू का शृङ्गार सा कर रहा है—उसे प्रसन्न करने के लिये उसके मुख पर चन्दन का लेप सा लगा रहा है। पूर्व-दिग्वधू के द्वारा किये गये उपहास की तरफ़ उसका ध्यान ही नहीं।

मद्यपान करने से, नशे के कारण, स्त्रियों के मुख पर लालिमा आ जाती है। इस दशा में मदमाती स्त्रियों की स्वाभाविकी लज्जा जाती रहती है और वे अपने मुँह से घूँघट हटा देती हैं। अरुणोदय हो जाने के कारण पूर्वदिग्रूपिणी स्त्री का भी मुख इस समय मदमाती स्त्री ही के सदृश लाल हो रहा है। घूँघट हट जाने की कसर थी। सो चन्द्रमा ने अपनी सफ़ेद सफ़ेद किरणों का जाल उसके मुख से हटा कर उस कमी की भी पूर्ति कर दी। इस कारण चन्द्रमा की बदौलत पूर्व-दिगङ्गना का खुला हुआ अरुण मुख, घूँघट से निकला हुआ सा, बहुत ही शोभायमान हो रहा है।

जब कमल शोभित होते हैं तब कुमुद नहीं और जब कुमुद शोभित होते हैं तब कमल नहीं। दोनों की दशा बहुधा एक सी

नहीं रहती। परन्तु, इस समय, प्रातःकाल, दोनों में तुल्यता देखी जाती है। कुमुद बन्द होने को हैं, पर अभी पूरे बन्द नहीं हुए। उधर कमल खिलने को हैं, पर अभी पूरे खिले नहीं। एक की शोभा आधी ही रह गई है और दूसरे को आधी ही प्राप्त हुई है। रहे भ्रमर, सो अभी दोनों ही पर मँडरा रहे हैं और गुञ्जारव के बहाने दोनों ही की प्रशंसा के गीत से गा रहे हैं। इसीसे इस समय कुमुद और कमल दोनों ही समता को प्राप्त हो रहे हैं।

सायङ्काल जिस समय चन्द्रमा का उदय था उस समय वह बहुत ही लावण्यमय था। क्रम क्रम से उसकी दीप्ति—उसकी सुन्दरता—और भी बढ़ गई। वह ठहरा रसिक। उसने सोचा, यह इतनी बड़ी रात यों ही कैसे कटेगी; लाओ खिली हुई नवीन कुमुदिनियों (कोकावलियों) के साथ हँसी-मज़ाक ही करें। वह उनकी शोभा के साथ हास-परिहास करके उनका विकास करने लगा। इस तरह खेलते कूदते सारी रात बीत गई। वह थक भी गया; शरीर पीला पड़ गया; कर (किरण-जाल) स्रस्त अर्थात् शिथिल हो गये। इससे वह दूसरी दिगङ्गना (पश्चिम दिशा) की गोद में जा गिरा। यह शायद उसने इसलिए किया कि रात भर के जगे हैं; लाओ अब उसकी गोद में आराम से सो जाँय।

अन्धकार के विकट वैरी महाराज अंशुमाली अभी तक दिखाई भी नहीं दिये। तथापि उनके सारथि अरुण ने ही, उनके अवतीर्ण होने के पहले ही, थोड़े ही नहीं, समस्त तिमिर का समूल नाश कर दिया। बात यह है कि जो प्रतापी पुरुष अपने

तेज से अपने शत्रुओं का पराभव करने की शक्ति रखते हैं उनके अग्रगामी सेवक भी कम पराक्रमी नहीं होते। स्वामी को श्रम न देकर वे खुदही उसके विपक्षियों का उच्छेद कर डालते हैं। इस तरह, अरुण के द्वारा अखिल अन्धकार का तिरोभाव होते ही बेचारी रात पर आफ़त आगई। इस दशा में वह कैसे ठहर सकती थी। निरुपाय होकर वह भाग चली। रह गई दिन और रात की सन्धि, अर्थात् प्रातःकालीन सन्ध्या। सो अरुण कमलों ही को आप इस अल्पवयस्क सुता-सदृश सन्ध्या के लाल लाल और अतिशय कोमल हाथ-पैर समझिए; मधुप-मालाओं से छाये हुए नील कमलों ही को काजल लगी हुई इसकी आँखें जानिये। पक्षियों के कलकल शब्द को ही इसकी तोतली बोली अनुमान कीजिए। ऐसी सन्ध्या ने जब देखा कि रात इस लोक से जा रही है तब पक्षियों के कोलाहल के बहाने यह कहती हुई कि 'अम्मा मैं भी आती हूँ' वह भी उसी के पीछे दौड़ गई।

अन्धकार गया; रात गई; प्रातःकालीन सन्ध्या भी गई। विपक्षि-दल के एक-दम ही पैर उखड़ गये। तब रास्ता साफ़ देख, वासर-विधाता भगवान् भास्कर ने निकल आने की तैयारी की। कुलिशपाणि इन्द्र की पूर्व दिशा में, नये सोने के समान उनकी पीली पीली किरणों का समूह छा गया। उनके इस प्रकार आविर्भाव से एक अजीब ही दृश्य दिखाई दिया। आपने वडवानल का नाम तो सुना ही होगा। यह एक प्रकार की आग है जो समुद्र के जल को जलाया करती है। सूर्य्य के उस लाल-पीले किरण-समूह को देख कर मालूम होने लगा जैसे वही वाडवाग्नि समुद्र की जलराशि को जला कर, त्रिभुवन को भस्म कर डालने के

इरादे से समुद्र के ऊपर उठ आई हो। धीरे धीरे दिननाथ का बिम्ब क्षितिज के ऊपर आगया। तब एक और ही प्रकार के दृश्य के दर्शन हुए। ऐसा मालूम हुआ जैसे सूर्य का वह बिम्ब एक बहुत बड़ा घड़ा है और दिग्वधुयें ज़ोर लगा कर समुद्र के भीतर से उसे खींच रही हैं। सूर्य्य की किरणों ही को आप लम्बी लम्बी मोटी रस्सियाँ समझिये। उन्हीं से उन्होंने बिम्ब को बाँध सा दिया है और खींचते वक्त, पक्षियों के कलरव के बहाने, वे यह कह कह कर शोर मचा रही हैं कि खींच लिया है; कुछ ही बाक़ी है; ऊपर आना ही चाहता है; ज़रा और ज़ोर लगाना।

दिगङ्गनाओं के द्वारा खींच खाँच कर किसी तरह सागर की सलिल-राशि से बाहर निकाले जाने पर सूर्य्य-बिम्ब चमचमाता हुआ लाल लाल दिखाई दिया। अच्छा, बताइए तो सही, वह यह इस तरह का क्यों है। हमारी समझ में तो यह आता है कि सारी रात पयोनिधि के पानी के भीतर जब यह पड़ा था तब वडवाग्नि की ज्वाला ने इसे तपा कर खूब दहकाया होगा। तभी तो खैर (खदिर) के जले हुए कुन्दे के अङ्गार के सदृश, लालिमा लिये हुए यह इतना शुभ्र दिखाई दे रहा है। अन्यथा आपही कहिए, इसके इतने अङ्गार-गौर होने का और क्या कारण हो सकता है ?

सूर्य्य-देव की उदारता और न्यायशीलता तारीफ के लायक़ है। तरफ़दारी तो उसे छू तक नहीं गई—पक्षपात की तो गन्ध तक उसमें नहीं। देखिए न, उदय तो उसका उदयाचल पर हुआ; पर क्षण ही भर में उसने अपने नये किरण-कलाप को उसी पर्वत के शिखर पर नहीं, किन्तु सभी पर्वतों के शिखरों पर फैला

कर उन सब की शोभा बढ़ा दी। उसकी इस उदारता के कारण इस समय ऐसा मालूम हो रहा है जैसे सभी भूधरों ने अपने शिखरों—अपने मस्तकों—पर दुपहरिया के लाल लाल फूलों के मुकुट धारण कर लिये हों। सच है, उदारशील सज्जन अपने चारु चरित्रों से अपने ही उदय-देश को नहीं, अन्य देशों को भी आप्यायित करते हैं।

उदयाचल के शिखर-रूप आँगन में बालसूर्य्य को खेलते हुए धीरे रेंगते देख, पद्मिनियों को बड़ा प्रमोद हुआ। सुन्दर बालक को आँगन में जानु-पाणि चलते देख स्त्रियों का प्रसन्न होना स्वाभाविक ही है। अतएव उन्होंने अपने कमल-मुख के विकास के बहाने हँस हँस कर उसे बड़े ही प्रेम से देखा। यह दृश्य देखकर माँ के सदृश अन्तरिक्ष देवता का हृदय भर आया। वह पक्षियों के कल-रव के मिस बोल उठी—आ जा, आ जा; आ बेटा, आ। फिर क्या था; बाल-सूर्य्य बाल-लीला दिखाता हुआ, झट अपने मृदुल कर (किरणें) फैलाकर, अन्तरिक्ष की गोद में कूद गया। उदयाचल पर उदित होकर ज़रा ही देर में वह आकाश में आ गया।

आकाश में सूर्य्य के दिखाई देते ही नदियों ने विलक्षण ही रूप धारण किया। दोनों तटों या कगारों के बीच से बहते हुए जल पर सूर्य्य की लाल लाल प्रातःकालीन धूप जो पड़ी, तो वह जल परिपक्व मदिरा के रङ्ग-सदृश हो गया। अतएव ऐसा मालूम होने लगा जैसे सूर्य्य ने अपने किरण-बाणों से अन्धकार-रूपी हाथियों की घटा को सर्वत्र मार गिराया हो, उन्हीं के घावों से निकला हुआ रुधिर बहकर नदियों में आ गया हो; और

उसीके मिश्रण से उनका जल लाल लाल हो गया हो। कहिए, यह सूझ कैसी है? बहुत दूर की तो नहीं?

तारों का समुदाय देखने में बहुत भला मालूम होता है, यह सच है। यह भी सच है कि भले आदमियों को न कष्ट ही देना चाहिए और न उनको उनके स्थान से च्युत ही करना—हटाना ही—चाहिए। परन्तु सूर्य्य का उदय अन्धकार का नाश करने ही के लिए होता है और तारों की श्रीवृद्धि अन्धकार ही की बदौलत है। इसीसे लाचार होकर सूर्य्य को अन्धकार के साथ ही तारों का भी विनाश करना पड़ा—उसे उनको भी ज़बरदस्ती निकाल बाहर करना पड़ा। बात यह है कि शत्रु की बदौलत ही जिन लोगों को सम्पत्ति और प्रभुता प्राप्त होती है उनको भी मार भगाना ही पड़ता है—शत्रु के साथ ही उनका भी विनाश-साधन करना ही पड़ता है। न करने से भय का कारण बना ही रहता है। राजनीति यही कहती है।

सूर्य्योदय होते ही भयभीत होकर अन्धकार भागा। भागकर वह कहीं गुहाओं के भीतर और कहीं घरों के कोनों और कोठरियों के भीतर जा छिपा। मगर वहाँ भी उसका गुज़ारा न हुआ। सूर्य्य यद्यपि बहुत दूर आकाश में था तथापि उसके प्रबल तेजःप्रताप ने छिपे हुए अन्धकार को उन जगहों से भी निकाल बाहर किया। निकाला ही नहीं, किन्तु उसका सर्वथा नाश भी कर दिया। बात यह है कि तेजस्वियों का कुछ स्वभाव ही ऐसा होता है कि एक निश्चित स्थान में रहकर भी वे अपने प्रताप की धाक से दूर-स्थित शत्रुओं का भी सर्वनाश कर डालते हैं।

सूर्य और चन्द्रमा ये दोनों ही आकाश की दो आँखों के

समान हैं। उनमें से सहस्रकिरणात्मकमूर्तिधारी सूर्य्य ने ऊपर उठकर जब अशेष लोकों का अन्धकार दूर कर दिया, तब वह खूब ही चमक उठा। उधर बेचारा चन्द्रमा किरणहीन हो जाने से बहुत ही धूमिल हो गया। इस तरह आकाश की एक आँख तो खूब तेजस्क और दूसरी तेजोहीन हो गई। अतएव ऐसा मालूम हुआ जैसे एक आँख प्रकाशवती और दूसरी अन्धी-वाला आकाश काना हो गया हो।

कुमुदिनियों का समूह शोभाहीन हो गया और सरोरुहों का समूह शोभासम्पन्न। उलूकों को तो शोक ने आ घेरा और चक्र-वाकों को अत्यानन्द ने। इसी तरह सूर्य तो उदय हो गया और चन्द्रमा अस्त। कैसा आश्चर्यजनक विरोधी दृश्य है! दुष्ट दैव की चेष्टाओं का परिपाक कहते नहीं बनता। वह बड़ा ही विचित्र है किसी को तो वह हँसाता है, किसी को रुलाता है।

सूर्य्य को आप दिग्वधुओं का पति समझ लीजिए और यह भी समझ लीजिए की पिछली रात वह कहीं और किसी जगह, अर्थात् विदेश चला गया था मौक़ा पाकर इसी बीच, उसकी जगह पर चन्द्रमा आ बिराजा। पर ज्यों हीं सूर्य्य अपना प्रवास समाप्त करके, सबेरे, पूर्व-दिशा में फिर आ धमका त्योंही उसे देख चन्द्रमा के होश उड़ गये। अब क्या हो? और कोई उपाय न देख, अपने किरण-समूह को कपड़े-लत्ते के सदृश छोड़, गर्दन झुकाकर, वह पश्चिम-दिशारूप खिड़की के रास्ते निकल भागा।

महामहिम भगवान् मधुसूदन जिस समय कल्पान्त में, समस्त लोकों का प्रलय बात की बात में कर देते हैं उस समय

अपनी समधिक अनुरागवती श्री (लक्ष्मी) को धारण करके—उन्हें साथ लेकर—क्षीरसागर में अकेले ही जा बिराजते हैं। दिन चढ़ आने पर महिमामय भगवान् भास्कर भी उसी तरह एक क्षण में सारे तारा-लोक का संहार करके, अपनी अतिशायिनी श्री (शोभा) के सहित, क्षीरसागर ही के समान आकाश में देखिए, अब ये अकेले ही मौज कर रहे हैं।

श्रीयुत महावीर प्रसाद द्विवेदी

पाँचवाँ गुच्छ

अतिथि

(१)

काँठाल के जमीन्दार बाबू मोतीलाल नाव किराए की करके अपने परिवार सहित स्वदेश जा रहे थे। रास्ते में दोपहर के समय उन्होंने नदी तट के एक बाजार के पास नाव बँधवा दी थी और वहीं रसोई आदि बनाने का आयोजन हो रहा था। इतने में एक ब्राह्मण बालक ने उनके पास आकर पूछा—बाबूजी, आप लोग कहाँ जायँगे ? बालक की अवस्था पन्द्रह सोलह वर्ष से अधिक न होगी।

मोती बाबू ने उत्तर दिया—हम लोग काँठाल जायँगे।

ब्राह्मण बालक ने पूछा—क्या आप मुझे रास्ते में नन्दी गाँव में उतार देंगे ?

मोती बाबू ने उसे रास्ते में उतार देना मंजूर कर लिया और पूछा—तुम्हारा नाम क्या है ?

ब्राह्मण बालक ने उत्तर दिया—मेरा नाम तारापद है।

गोरे रंग का वह बालक देखने में बहुत सुन्दर था। उसकी बड़ी बड़ी आँखों और हसते हुए होठों से बहुत ही ललित सुकु-

मारता प्रकट होती थी। वह केवल एक मैली धोती पहने हुए था। उसका शेष सारा शरीर नंगा था। उसके सब अङ्ग बहुत ही सुडौल थे। ऐसा जान पड़ता था कि किसी बहुत अच्छे कारीगर ने बहुत यत्न से उसके सब अङ्ग बहुत ध्यानपूर्वक गढ़े हैं। मानो वह पूर्व जन्म में तापस बालक था और निर्मल तपस्या के प्रभाव से उसके शरीर में से सारे शारीरिक विकार आदि बहुत अधिक परिमाण में निकल जाने से एक सम्मार्जित ब्रह्मण्य श्री उसमें से प्रस्फुटित हो उठी है।

मोती बाबू ने बहुत ही स्नेहपूर्वक उससे कहा—बेटा, तुम जाकर स्नान कर आओ। तुम्हारा भोजन यहीं होगा।

तारापद ने कहा—अच्छा, आप भोजन बनाइए।

इतना कहकर वह बालक बिना किसी प्रकार के संकोच के रसोई बनाने में सहायता देने लगा। बाबू मोतीलाल का नौकर हिन्दुस्तानी था। मछली चीरने और काटने आदि के काम में वह उतना अधिक निपुण नहीं था। तारापद ने वह काम उसके हाथ से ले लिया और थोड़ी ही देर में उसे अच्छी तरह सम्पन्न भी कर दिया। इसके सिवा उसने एक दो तरकारियाँ भी ऐसी अच्छी तरह पका दीं जिससे जान पड़ता था कि वह इन कामों में अच्छा अभ्यस्त है। जब रसोई पक चुकी, तब तारापद ने नदी में स्नान करके अपनी छोटी सी गठरी खोल कर उसमें से एक सफेद धोती निकालकर पहनी, काठ की एक छोटी कंघी निकालकर अपने सिर के बड़े बड़े बाल माथे पर से हटाकर पीछे गर्दन की ओर डाल दिये और स्वच्छ यज्ञोपवीत धारण किये हुए वह नाव में बाबू मोतीलाल के पास जा पहुँचा।

मोती बाबू उसे नाव के अन्दर ले गए। वहाँ मोती बाबू की स्त्री और नौ वर्ष की उनकी कन्या दोनों बैठी हुई थीं। इस सुन्दर बालक को देखकर मोती बाबू का स्त्री अन्नपूर्णा का हृदय प्रेम से भर गया। वह मन ही मन सोचने लगी—आहा! यह किसका बालक है, कहाँ से आ रहा है—इसे छोड़कर भला इसकी मा कैसे सुख से रहती होगी—उससे कैसे रहा जाता होगा!—

थोड़ी देर में मोती बाबू और इस छोटे बालक के लिए पास ही पास दो आसन बिछ गए। बालक बहुत ही कम भोजन कर रहा है, यह देखकर अन्नपूर्णा ने मन में सोचा कि यह कुछ संकोच कर रहा है। उसने उससे बहुत अनुरोध किया कि थोड़ा यह खा लो, थोड़ा वह खा लो। पर जब उसका पेट भर गया, तब फिर उसने कोई अनुरोध नहीं माना। सब लोगों ने देखा कि यह बालक सब काम अपनी ही इच्छा से करता है और ऐसे सहज में करता है कि किसी को यह नहीं जान पड़ता कि वह जिद करता है या अपनी ही बात रखना चाहता है। उसके व्यवहार में कहीं लज्जा का नाम भी नहीं दिखाई देता था।

जब सब लोग भोजन कर चुके, तब अन्नपूर्णा ने उसे अपने पास बैठाकर बहुत सी बातें पूछीं और उसका विस्तृत इतिहास जानना चाहा; पर उसे कुछ बहुत अधिक पता नहीं चला। बस यही पता चला कि यह बालक सात आठ वर्ष की अवस्था में ही अपनी इच्छा से घर बार छोड़कर भाग आया है।

अन्नपूर्णा ने पूछा—तुम्हारी माँ नहीं हैं?

तारापद ने कहा—हैं।

अन्नपूर्णा ने फिर पूछा—क्या वे तुम्हें नहीं चाहतीं ?

तारापद को मानो उसका यह प्रश्न बहुत ही अद्भुत जान पड़ा। वह जोर से हँस पड़ा और बोला—क्यों, चाहती क्यों नहीं !

अन्नपूर्णा ने फिर पूछा—तो फिर तुम उसे छोड़कर चले कैसे आए ?

तारापद ने कहा—उसके और भी चार लड़के और तीन लड़कियाँ हैं।

बालक का यह अद्भुत उत्तर सुनकर अन्नपूर्णा बहुत ही दुःखी हुईं। उसने कहा—वाह, भला यह भी कोई बात है ! हाथ में पाँच उँगलियाँ हैं, तो क्या इसलिए एक उँगली काट डाली जाय ?

तारापद की अवस्था कम थी और इसीलिए उसका इतिहास भी बहुत ही संक्षिप्त था। पर फिर भी उसमें बहुत ही विलक्षणता और नवीनता थी। वह अपने पिता माता का चौथा पुत्र था और छोटी अवस्था में ही पितृहीन हो गया था। यद्यपि उसकी माता की कई सन्तानें थीं, तथापि घर में उसका बहुत आदर था। माँ, भाई, बहनें और पास पड़ोस के लोग सभी उसके साथ बहुत अधिक प्रेम करते थे। यहाँ तक कि गुरुजी भी कभी उसे मारते पीटते नहीं थे। यदि कभी वे उसे कुछ मार भी बैठते थे, तो उसके अपने पराए सभी लोगों को बहुत अधिक दुःख होता था। ऐसी दशा में उसके लिए घर छोड़कर भागने का कोई कारण नहीं था। जो लड़का उपेक्षित और रोगी सा था, तथा सदा ही चुरा चुराकर पेड़ों के फल और उन पेड़ों के मालिकों से प्रतिफल स्वरूप चौगुनी मार खाकर इधर उधर घूमा

करता था, वह तो अपनी परिचित ग्राम-सीमा में मारपीट करने वाली माँ के पास पड़ा रह गया और सारे गाँव का प्यारा यह बालक विदेशी रासधारियों के दल के साथ प्रसन्नतापूर्वक गाँव छोड़कर भाग आया।

सब लोग उसे ढूँढ़कर फिर गाँव में ले आए। माता ने उसे कलेजे से लगाकर रोते रोते आँसुओं से उसका सारा शरीर भिगो दिया। उसकी बहनें भी रोने लगीं। उसके बड़े भाई ने पुरुष अभिभावक का कठिन कर्तव्य पालन करने के लिए उसे पहले तो बहुत ही साधारण रूप से कुछ डाँटने डपटने की चेष्टा की और अन्त में बहुत ही अनुतप्त हृदय से बहुत आश्वासन और पुरस्कार दिया। पास पड़ोस की स्त्रियाँ उसे अपने अपने घर बुलाकर उसका बहुत आदर करती थीं और उसे बहुत कुछ प्रलोभन देकर बाँधना चाहती थीं। पर इन बन्धनों को, यहाँ तक कि स्नेह-बन्धन को भी उसने कुछ न समझा। उसके जन्म-काल के नक्षत्रों ने ही उसे गृह-हीन बना दिया था। वह जब देखता था कि विदेशी मल्लाह लोग गून खींचकर नदी में से नावें ले जा रहे हैं, अथवा गाँव के बड़े बड़ के वृक्ष के नीचे किसी दूर देश से आकर कोई संन्यासी ठहरा है, अथवा कंजड़ लोग नदी किनारे के पड़े हुए मैदान में छोटी छोटी झोपड़ियाँ बाँधकर बाँस छील छील कर टोकनियाँ और डालियाँ तयार कर रहे हैं, तब अज्ञात बाहरी पृथ्वी की स्नेहहीन स्वाधीनता के लिए उसका चित्त अशान्त हो उठता था। जब वह लगातार दो तीन बार घर छोड़ छोड़कर भागा, तब उसके घर के लोगों तथा गाँव वालों ने उसकी आशा छोड़ दी।

पहले वह रासधारियों के एक दल के साथ गया था। उस

दल का प्रधान उसे पुत्र के समान चाहता था और वह दल के सभी छोटे बड़े आदमियों का प्रेमपात्र बन गया था—यहाँ तक कि जिस घर में रास होती थी उस घर के मालिक और विशेषतः स्त्रियाँ भी उसे बहुत मानती थीं और विशेष-रूप से उसे अपने पास बुलाकर उसका बहुत आदर किया करती थीं। इतना सब कुछ होने पर भी वह एक दिन बिना किसी से कुछ कहे सुने, न जाने कहाँ चला गया और फिर किसी को उसका पता नहीं लगा।

तारापद को बन्धन से उतना ही डर लगता था, जितना हिरन के बच्चे को लगता है; और हिरन के ही समान वह संगीत का भी प्रेमी था। रासधारियों के संगीत ने ही पहले पहल घर से उसका मन उचाट किया था। संगीत का स्वर सुनते ही उसके शरीर की नसें काँपने लगती थीं और गाने के ताल पर उसका सारा शरीर हिलने लगता था। जिस समय वह बहुत छोटा था, उस समय भी संगीत सभा में वह इस प्रकार संयत और गम्भीर वयस्क के समान आत्म-विस्मृत होकर बैठा बैठा हिला करता था कि देखकर प्रवीण लोगों को अपनी हँसी रोकना कठिन हो जाता था। केवल संगीत ही क्यों, जिस समय वृक्षों के घने पत्तों पर श्रावण की वृष्टि की धारा पड़ती थी, आकाश में मेघ गरजता था, जंगल में मातृ-हीन दैत्य-शिशु के रोने के समान हवा की सनसनाहट होती थी, उस समय भी उसका चित्त मानो बहुत ही उच्छृंखल हो उठता था। जब निस्तब्ध दोपहर के समय बहुत दूर आकाश में चील चिल्लाती थी, वर्षा ऋतु में सन्ध्या के समय मेंढक बोलते थे, गम्भीर रात्रि में गीदड़ चिल्लाते थे, तब भी वह मानो उतावला सा होकर बहक उठता था। इसी संगीत के मोह से आकृष्ट होकर

वह शीघ्र ही भजनीकों के एक दल में आकर सम्मिलित हो गया था। भजनीकों के उस दल का अध्यक्ष बहुत ही यत्नपूर्वक उसे गाना सिखलाया करता था और उसे अपने भजन तथा गीत आदि कंठ कराया करता था। वह उसे अपने हृदय-रूपी पिंजरे के पक्षी के समान प्रिय समझता था और उसके साथ स्नेह करता था। पक्षी ने कुछ कुछ गाना सीखा और एक दिन प्रातःकाल के समय वहाँ से उड़कर चला गया।

अन्तिम बार वह एक जिम्नास्टिक करनेवालों के दल में जा मिला था। उस प्रान्त में ज्येष्ठ मास के अन्त से लेकर आषाढ मास के अन्त तक एक के बाद एक करके स्थान स्थान पर अनेक मेले हुआ करते हैं। उन्हीं मेलों में जाकर कमाने खाने के लिए कई रासधारी, गाने बजानेवाले भजनीक कवि, नाचनेवाली स्त्रियाँ और तरह तरह की चीजें बेचनेवाले दूकानदार आदि नावों पर चढ़कर छोटी छोटी नदियों और उपनदियों आदि में से होते हुए एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाया करते हैं। पिछले वर्ष से कलकत्ते के जिम्नास्टिक करनेवालों का भी एक छोटा सा दल इन मेलों के आमोदचक्र में योग दिया करता था। तारापद ने पहले तो नाववाले एक दूकानदार के साथ मिलकर पान बीड़े बेचने का भार लिया। इसके उपरान्त अपने स्वाभाविक कुतूहल के कारण वह जिम्नास्टिक करनेवाले बालकों का व्यायाम-नैपुण्य देखकर उनकी ओर आकृष्ट हुआ और उन्हीं के दल में जा मिला। तारापद ने स्वयं ही अभ्यास करके बहुत अच्छी तरह वंशी बजाना सीख लिया था। जिस समय जिम्नास्टिक होता था, उस समय वह द्रुत ताल में वंशी में लखनऊ की

ठुमरी बजाया करता था। बस यही उसका एक काम था।

अन्तिम बार वह इसी दल में से भागा था। उसने सुना था कि नन्दीग्राम के जमींदार लोग मिलकर यात्रा या रास-धारियों की एक बहुत बड़ी मंडली खड़ी कर रहे हैं। यही सुनकर वह अपनी छोटी सी गठरी लेकर नन्दीग्राम जाने का आयोजन कर रहा था और इसी बीच में मोती बाबू के साथ उसकी भेंट हुई थी।

यद्यपि तारापद कई दलों में रह चुका था, पर अपनी प्रकृति के कारण उसने किसी दल की कोई विशेषता नहीं प्राप्त की थी। अपने अन्तर में वह सदा पूर्ण-रूप से निर्लिप्त और मुक्त रहता था। वह संसार की अनेकों कुत्सित बातें सदा सुना करता था और अनेक कदर्य दृश्य उसकी आँखों के सामने से गुजरते थे; परन्तु उन सब बातों को उसके मन में संचित होने का तिलमात्र भी अवसर नहीं मिला था। इस लड़के का उन सब बातों में से किसी पर भी ध्यान नहीं था। जिस प्रकार और किसी तरह का कोई बन्धन उसे नहीं बाँध सकता था, उसी प्रकार अभ्यास-बन्धन भी उसके मन को बद्ध नहीं कर सकता था। वह इस संसार के गँदले जल के ऊपर शुभ्र-पक्ष राजहँस की भाँति सदा अलग ही घूमा करता था। वह अपने कुतूहल के कारण उस गँदले जल में चाहे जितने बार डुबकी लगाता था, पर फिर भी उसके पंख गीले या मलिन नहीं हो सकते थे। इसी लिए इस गृहत्यागी बालक के मुख पर एक शुभ्र स्वाभाविक तारुण्य अम्लान भाव से प्रकाशित हो रहा था। उसके मुख को वही श्री देखकर प्रवीण अनुभवी मोतीलाल बाबू ने बिना उससे कुछ पूछे ही और

उस पर बिना किसी प्रकार का सन्देह किए ही उसे परम आदरपूर्वक अपने साथ ले लिया था।

(२)

जब सब लोग भोजन आदि कर चुके, तब नाव खोल दी गई। अन्नपूर्णा बहुत ही स्नेहपूर्वक इस ब्राह्मण बालक से उसके घर तथा आत्मीय परिजनों आदि की बातें पूछने लगी। तारापद ने उसके सब प्रश्नों का बहुत ही संक्षेप में उत्तर देकर किसी प्रकार अपनी जान छुड़ाई और वह बाहर आकर खड़ा हो गया। बाहर वर्षा की नदी परिपूर्णता की अन्तिम रेखा तक भर उठी थी और उसने अपनी चंचलता से प्रकृति माता को मानो उद्विग्न कर दिया था। आकाश में बादल न होने के कारण धूप बहुत तेज हो रही थी। उस धूप में नदी के तट पर काँस तथा दूसरे अनेक प्रकार के तृण आदि आधे पानी में डूबे हुए थे और आधे बाहर निकले हुए थे। उनके ऊपर सरस सघन ऊख के खेत थे और उनकी दूसरी ओर बहुत दूर दूर तक नीलांजन वर्ण की वन-रेखा थी। मानो ये सब पुरानी कहानी की सोने की छड़ी के स्पर्श से सद्यःजाग्रत नवीन सौन्दर्य के समान निर्वाक् नीलाकाश की मुग्ध दृष्टि के सामने प्रस्फुटित हो उठे थे। सभी मानो सजीव, स्पन्दित, प्रगल्भ, आलोक के द्वारा उद्भासित नवीनता से चिकने, चमकते हुए तथा प्रचुरता से परिपूर्ण थे।

तारापद ने नाव की छत पर पहुँचकर पाल की छाया में आश्रय लिया। धीरे धीरे ढालुए हरे भरे किनारे, पानी से भरे हुए पटसन के खेत, गाढ़ श्यामल धानों का लहराना, घाट से गाँव की ओर जाने वाली संकीर्ण पगडंडियाँ, घने वनों से घिरे हुए

छायामय ग्राम, उसकी आँखों के सामने आने लगे। यही जल, स्थल और आकाश, यही चारों ओर की सचलता, सजीवता और मुखरता, यही ऊर्ध्व अधोदेश की व्याप्ति और वैचित्र्य तथा निर्लिप्त सुदूरता, यही सुबृहत् चिरस्थायी निर्निमेष वाक्य-विहीन विश्व जगत् उस तरुण बालक का सब से बड़ा आत्मीय (अपना) था। फिर भी वह इस चंचल मानव-कटि को एक क्षण के लिए भी स्नेहबाहु से पकड़ रखने की चेष्टा नहीं करता था। बछड़े अपनी रस्सी तुड़ाकर नदी के तट पर दौड़ रहे थे। गाँवों के टट्टू रस्सी से बँधे हुए अगले दोनों पैरों से उछलते हुए घास खाते फिरते थे। मच्छीखोर (पक्षी) मछुओं के जाल बाँधने के बाँसों के ऊपर से बहुत वेग के साथ धप से जल में कूदकर मछलियाँ पकड़ रहे थे। लड़के जल में उतरकर अनेक प्रकार की क्रीडाएँ कर रहे थे। स्त्रियाँ जोर जोर से हँसती हुई आपस में बातें करती जाती थीं और छाती तक जल में उतरकर अपनी धोतियों के आँचल फैलाकर दोनों हाथों से उन्हें मल मलकर साफ कर रही थीं। मछली बेचनेवाली स्त्रियाँ कमर बाँधे हुए, मछुओं से मछलियाँ खरीद रही थीं। तारापद बैठा बैठा सदा नवीन बने रहनेवाले अश्रान्त कुतूहल से यह सब देख रहा था—उसकी दृष्टि की प्यास किसी तरह बुझती ही न थी।

नाव की छत पर पहुँचकर तारापद ने पाल की रस्सी थामने वाले मल्लाह से बातें करना आरम्भ कर दिया। बीच बीच में आवश्यकता पड़ने पर वह मल्लाह के हाथ से लग्गी लेकर आप भी दस पाँच हाथ लगा दिया करता था। जब मल्लाह को तमाखू पीने की आवश्यकता हुई, तब उसने उसके हाथ से पतवार ले

ली और जब जिधर पाल घुमाने की आवश्यकता हुई, तब बहुत ही दक्षतापूर्वक उसे भी उधर घुमा दिया।

जब सन्ध्या होने को आई, तब अन्नपूर्णा ने उसे बुलाकर पूछा—रात के समय तुम क्या खाया करते हो ?

तारापद ने कहा—जो कुछ मिल जाय, वही खा लेता हूँ। और फिर मैं नित्यशः रात को खाता भी नहीं।

आतिथ्य ग्रहण में इस सुन्दर बालक की उदासीनता अन्नपूर्णा को कुछ कुछ कष्ट देने लगी। वह बहुत चाहती थी कि मैं अच्छी तरह खिला पहना कर इस गृह-च्युत बालक को भली भाँति तृप्त कर दूँ। पर उसे किसी प्रकार इस बात का पता ही न चला कि आखिर किस बात से तारापद का परितोष होता है। अन्नपूर्णा ने नौकर को बुलाकर गाँव से दूध और मिठाई आदि खरीद लाने के लिए कहा। तारापद ने यथापरिमाण आहार तो कर लिया; परन्तु दूध नहीं पीया। मौनस्वभाव मोतीलाल बाबू ने भी उससे दूध पी लेने के लिये अनुरोध किया। पर उसने संक्षेप में यही कह दिया कि मुझे दूध अच्छा नहीं लगता।

इसी प्रकार नदी में नाव पर ही दो तीन दिन बीत गए। तारापद रसोई बनाने और परोसने तथा बाजार से सौदा सुलफ लाने से लेकर नाव चलाने तक के सभी कामों में अपनी इच्छा और बहुत ही तत्परता से योग दिया करता था। जो दृश्य उसकी आँखों के सामने आता था, उसी ओर उसकी कुतूहल-पूर्ण दृष्टि दौड़ जाती थी। जो काम उसके हाथ के आगे आ जाता था, उसकी दृष्टि, उसके हाथ, उसका मन सभी सदा सचल रहा करते थे और इसीलिए वह नित्य सचला प्रकृति के समान सदा निश्चि-

न्त, उदासीन और सदा क्रियासक्त रहता था। प्रत्येक मनुष्य की एक निज की स्वतंत्र अधिष्ठान भूमि हुआ करती है। परन्तु तारापद इस अनन्त नीलाम्बरवाही विश्व-प्रवाह में एक आनन्दोज्ज्वल तरंग के समान था। भूत या भविष्य के साथ उसका किसी प्रकार का कोई बन्धन नहीं था। सामने की ओर बढ़े चलना ही उसका एक मात्र कार्य था।

इधर बहुत दिनों से वह अनेक प्रकार को मंडलियों और सम्प्रदायों आदि के साथ रहता आया था, इसलिए अनेक प्रकार की मनोरंजन करने की विद्याएँ उसे अच्छी तरह आती थीं। कभी किसी प्रकार की चिन्ता से आच्छन्न न रहने के कारण उसके निर्मल स्मृति-पट पर सभी चीजें बहुत ही सहज भाव से मुद्रित हो जाती थीं। अनेक प्रकार के भजन, कीर्तन, कथाएँ, अभिनय आदि उसे कंठ थे। बाबू मोतीलाल अपनी बहुत दिनों की प्रथा के अनुसार एक दिन सन्ध्या समय अपनी स्त्री और कन्या को रामायण पढ़कर सुना रहे थे। कुश और लव का प्रकरण था। उस समय तारापद अपने उत्साह को न रोक सका और नाव की छत पर से नीचे उतरकर बोला—आप पुस्तक रख दीजिए। मैं कुश और लवसम्बन्धी कुछ गीत आप लोगों को सुनाता हूँ। आप लोग जरा ध्यानपूर्वक सुनिए।

इतना कहकर उसने लव और कुश के सम्बन्ध की कथा के गीत आरम्भ कर दिए। वंशी के समान अपने मीठे स्वर से वह धाराप्रवाह की भाँति अनेक प्रकार के गीत सुनाने लगा। सब मल्लाह आदि भी द्वार के पास गीत सुनने के लिए आ खड़े हुए। उस नदी तट के सन्ध्या समय के आकाश में हास्य, करुणा और

उस दिन अन्नपूर्णा ने मन में सोचा था कि संगीत से वन के पशु भी बश में हो जाते हैं; इसलिये आज कदाचित् मेरी कन्या का मन भी कुछ शान्त हो गया होगा। इसलिये उसने उससे पूछा भी था—चारु, तुम्हें ये गीत कैसे लगे? पर चारुशशि ने उसके इस प्रश्न का कोई उत्तर नहीं दिया और बहुत जोर से सिर हिला दिया। यदि उसकी इस भंगी का भाषा में अनुवाद किया जाय, तो उसका यही अर्थ होगा कि मुझे यह सब ज़रा भी अच्छा नहीं लगा और न कभी अच्छा लगेगा।

अन्नपूर्णा ने समझ लिया कि चारु के मन में ईर्ष्या का उदय हुआ है, इसलिए उसने चारु के सामने तारापद के प्रति अपना स्नेह प्रकट करना बन्द कर दिया। सन्ध्या के समय जब चारु जल्दी ही भोजन करके सो जाती थी, तब अन्नपूर्णा नाव की कोठरी के दरवाजे पर आ बैठती थी। मोती बाबू और तारापद दोनों दरवाजे के बाहर बैठते थे और अन्नपूर्णा के अनुरोध से तारापद गीत और भजन आदि आरम्भ करता था। उसके गीत से जब नदी तट की विश्राम करती हुई ग्रामश्री सन्ध्या के विपुल अन्धकार में मुग्ध तथा निस्तब्ध हो जाती थी और अन्नपूर्णा का कोमल हृदय स्नेह तथा सौन्दर्य रस से परिपूर्ण हो जाता था, उस समय चारु सहसा बिछौने पर उठ बैठती थी और जल्दी जल्दी वहाँ पहुँच कर क्रोधपूर्वक रोती हुई कहती थी—माँ, तुम लोगों ने यह क्या बखेड़ा लगा रक्खा है। मुझे नींद नहीं आती। माता पिता उसे अकेली सोने के लिए भेज देते हैं और तारापद को घेरकर संगीत का आनन्द लेते हैं, यह बात उसे बहुत ही असह्य होती थी। दीप्त कृष्ण नयनोंवाली इस

बालिका की स्वाभाविक सुतीव्रता तारापद को बहुत ही अधिक कौतुकजनक जान पड़ती थी। उसने कथाएँ सुनाकर, गीत गाकर, वंशी बजाकर इस बालिका को वश करने की बहुत चेष्टा की, वह किसी प्रकार कृतकार्य न हो सका। हाँ, केवल दोपहर के समय जब तारापद नदी में स्नान करने के लिए उतरता था और परिपूर्ण जल-राशि में अपने गौर वर्ण शरीर से तरह तरह से तैर कर तरुण जलदेवता के समान शोभा पाता था, उस समय उस बालिका का कुतूहल आकृष्ट हुए बिना नहीं रहता था। वह सदा उसी समय की प्रतीक्षा किया करती थी, पर फिर भी वह अपना यह आन्तरिक आग्रह किसी पर प्रकट नहीं होने देती थी और मन लगाकर ऊनी गुलूबन्द बुनने का अभ्यास करते करते बीच बीच में मानो बहुत ही उपेक्षापूर्वक तारापद का तैरना देख लिया करती थी।

(४)

नन्दीग्राम कब पीछे छूट गया, इस बात की तारापद ने कुछ भी खोज खबर नहीं ली। अत्यन्त मृदु-मन्द गति से वह बड़ी नाव कभी पाल उड़ाकर, कभी गून से खिंचकर नदी की शाखा-प्रशाखाओं में से होकर चलने लगी। नाव की सवारियों के दिन भी इन सब नदी और उपनदियों के समान शान्ति और सौन्दर्य से पूर्ण वैचित्र्य में से होकर सहज और सौम्य भाव से गमन करते हुए मृदु और मिष्ट कल स्वर से प्रवाहित होने लगे। किसी को कोई जल्दी तो थी ही नहीं। दोपहर के समय स्नान और भोजन आदि में ही बहुत अधिक विलम्ब हो जाया करता

था। उधर सन्ध्या होते न होते कोई बड़ा सा वट-वृक्ष देखकर किसी गाँव के किनारे घाट के निकट किसी झिल्लीझङ्कृत और खद्योतखचित वन के पास नाव बाँध दी जाया करती थी।

इस प्रकार कोई दस दिनों में नाव काँठाल पहुँची। जमीन्दार आ रहे थे, इसलिए घर से पालकी और घोड़ा आया था और हाथ में बाँस की लाठियाँ लिए हुए बरकन्दाजों के दल ने बन्दूकों की खाली आवाजों से गाँव के उत्कण्ठित कौवों को इतना अधिक मुखर बना दिया था जिसका कोई ठिकाना ही नहीं था।

इस समारोह में कुछ विलम्ब हो रहा था। इस बीच में तारापद नाव पर से जल्दी उतरकर सारे गाँव का एक चक्कर लगा आया। उसने किसी को भाई, किसी को चाचा, किसी को बहिन और किसी को मौसी कहकर दो तीन घंटे के अन्दर ही गाँव भर के साथ सौहार्द-बन्धन स्थापित कर लिया। उसके लिए कहीं कोई प्रकृत बन्धन तो था ही नहीं, इस लिए वह बहुत ही जल्दी और बहुत ही सहज में सब के साथ परिचय कर लेता था। थोड़े ही दिनों में देखते देखते तारापद ने गाँव के सभी लोगों के हृदयों पर अधिकार कर लिया।

इतने सहज में हृदय हरण करने का कारण यही था कि तारापद सब लोगों के साथ बिलकुल आपसदारों की तरह मिल जुल सकता था। वह किसी प्रकार के विशेष संस्कार के द्वारा तो बद्ध था ही नहीं, पर सभी अवस्थाओं में सभी कार्यों के प्रति उसकी एक प्रकार की सहज प्रवृत्ति हुआ करती थी। बालकों में वह पूर्ण-रूप से स्वाभाविक बालक था, परन्तु उनकी अपेक्षा श्रेष्ठ और स्वतंत्र वृद्धों के निकट वह बालक नहीं था, साथ ही

वृद्ध भी नहीं था। ग्वालों के साथ वह ग्वाला, साथ ही ब्राह्मण भी था। सभी लोगों के समस्त कामों में वह पुराने सहयोगी की भाँति अभ्यस्त भाव से हस्तक्षेप किया करता था। जब वह हलवाई की दूकान पर बैठकर उससे बातें किया करता था, तब हलवाई कहता था—भइया, ज़रा बैठे रहना। मैं अभी आता हूँ। उस समय तारापद भी प्रसन्नतापूर्वक दूकान पर बैठा बैठा एक बड़ा सा पत्ता लेकर मिठाई पर की मक्खियाँ उड़ाने लगता था। मिठाई बनाने में भी वह बहुत होशियार था। ताँती का काम भी कुछ कुछ जानता था और कुम्हार का चाक चलाने से भी बिलकुल अनभिज्ञ नहीं था।

इस तरह तारापद ने गाँव के सभी लोगों को अपना बना लिया था, केवल ग्रामवासिनी एक बालिका की ईर्ष्या पर वह अब तक भी विजय नहीं प्राप्त कर सका था। जान पड़ता था कि तारापद इस गाँव में केवल इसीलिए इतने दिनों तक रह गया था कि वह जानता था कि यह बालिका मुझे किसी दूर देश में निर्वासित करने की बहुत ही तीव्र भाव से कामना कर रही है।

परन्तु चारुशशि ने इस बात का प्रमाण दे दिया कि बाल्यावस्था में भी नारी के हृदय के अन्दर का रहस्य समझना बहुत ही कठिन है।

सोनामणि नाम की एक ब्राह्मण-कन्या—जो पाँच वर्ष की अवस्था में विधवा हो गई थी—चारु की समवयसी सखी थी। उस समय सोनामणि शरीर से कुछ अस्वस्थ थी; इसलिए जब चारु लौटकर घर आई थी, तब कुछ दिनों तक वह उससे भेंट करने के लिए न आ सकी थी। जब वह अच्छी हो गई और

एक दिन उससे भेंट करने के लिए आई, तब उसी दिन प्राय: बिना कारण ही दोनों सखियों में कुछ मनोमालिन्य होने का उपक्रम हो गया।

चारु ने बहुत विस्तार से बातें करना आरम्भ किया। उसने सोचा था कि मैं तारापद नामक अपने नवीन अर्जित किये हुए परम रत्न के आहरण की बातें बहुत ही विस्तारपूर्वक वर्णन करके अपनी सखी का कुतूहल और विस्मय सप्तम पर चढ़ा दूँगी। पर जब उसने सुना कि तारापद सोनामणि के लिए कुछ भी अपरिचित नहीं है; सोना की माँ को वह मौसी कहता है और सोनामणि उसे भइया कहती है; जब उसने सुना कि तारापद ने केवल वंशी बजाकर ही माता और कन्या का मनोरंजन नहीं किया है, बल्कि सोनामणि के अनुरोध से उसने अपने हाथ से उसके लिए बाँस की वंशी भी बना दी है; उसने कई बार उसके लिए ऊँची शाखाओं से फल और कँटीली शाखाओं से फूल तोड़ दिए हैं, तब चारु के अन्त:करण में जलता हुआ तीर सा बिंधने लगा। चारु समझती थी कि तारापद विशेष रूप से मेरा ही तारापद है। वह समझती थी कि तारापद बहुत ही गुप्त रूप से संरक्षित रखने की चीज है। दूसरे लोगों को उसका थोड़ा बहुत आभास मात्र मिलेगा—उसके पास तक किसी की भी पहुँच नहीं होगी। सब लोग दूर से ही उसके रूप और गुण पर मुग्ध होंगे और उसके लिए हम लोगों को धन्यवाद दिया करेंगे। पर अब वह सोचने लगी कि यह आश्चर्य-दुर्लभ दैव-लब्ध ब्राह्मण बालक सोनामणि के लिए क्यों कर सहज गम्य हो गया? यदि हम लोग इतने यत्न से उसे यहाँ न लाते, इतने

यत्न से उसे अपने यहाँ न रखते, तो सोनामणि को उसके दर्शन कहाँ से मिलते? वह सोनामणि का भाई है! सुनकर सारा शरीर जला जाता है।

चारु जिस तारापद को मन ही मन विद्वेष के शर से जर्जर करने की चेष्टा किया करती थी, उसी के एकाधिकार के लिए उसके मन में इस प्रकार का प्रबल उद्वेग क्यों हुआ?—भला किस की मजाल है कि यह बात समझ सके!

उसी दिन एक और तुच्छ बात पर सोनामणि और चारुशशि में भीतरी गाँठ पड़ गई और उसने तारापद की कोठरी में जाकर उसकी वंशी निकालकर, उस पर कूद कूदकर निर्दयतापूर्वक उसे तोड़ना शुरू कर दिया।

चारु जिस समय बहुत ही क्रोध में आकर उस वंशी को तोड़ फोड़ रही थी, उसी समय तारापद वहाँ आ पहुँचा। बालिका की यह प्रलयमूर्ति देखकर वह चकित हो गया। उसने पूछा—चारु, तुम मेरी वंशी क्यों तोड़ रही हो? चारु ने लाल आँखें और लाल मुँह करके कहा—मैंने अच्छा किया! बहुत अच्छा किया! इतना कहकर उसने उस टूटी हुई वंशी पर और दो चार बार "अनावश्यक" पदाघात करके उसका कचूमर निकाल डाला और तब उच्छ्वसित कंठ से रोती हुई वह उस कोठरी से बाहर निकल गई। तारापद ने वह वंशी उठाकर उलट पुलटकर देखी; उसमें कुछ भी दम नहीं रह गया था। अकारण अपनी पुरानी निरपराध वंशी की यह आकस्मिक दुर्दशा देखकर वह अपनी हँसी न रोक सका। चारुशशि दिन पर दिन उसके लिए परम कुतूहल की चीज होती जाती थी।

उसके लिए कुतूहल का एक और भी क्षेत्र था। मोतीलाल बाबू की लाइब्रेरी में अँग्रेजी की बहुत सी तसबीरदार किताबें थीं। बाहरी संसार के साथ तो उसका यथेष्ट परिचय हो चुका था, पर इन तसबीरों के जगत् में वह किसी प्रकार अच्छी तरह प्रवेश नहीं कर सकता था। वह अपने मन से कल्पना के द्वारा उसकी बहुत कुछ पूर्ति कर लिया करता था, पर उससे उसके मन को कुछ भी तृप्ति नहीं होती थी।

तसबीरोंवाली पुस्तकों के प्रति तारापद का इतना अधिक आग्रह देखकर एक दिन मोतीलाल बाबू ने कहा—तुम अँग्रेज़ी पढ़ोगे? यदि पढ़ लोगे, तो इन सब चित्रों का मतलब समझने लगोगे।

तारापद ने तुरन्त उत्तर दिया—हाँ, मैं अँगरेज़ी पढ़ूँगा।

मोतीलाल बाबू ने बहुत प्रसन्नतापूर्वक गाँव के स्कूल के हेडमास्टर बाबू रामरतन को नित्य सन्ध्या समय आकर उस बालक को पढ़ाने के काम पर नियुक्त कर दिया।

(५)

तारापद अपनी प्रखर स्मरण-शक्ति और अखंड मनोयोग से अँगरेज़ी सीखने लगा। वह मानो एक नवीन दुर्गम राज्य में भ्रमण करने के लिये बाहर निकल पड़ा। अब उसने पुराने संसार के साथ कोई सम्बन्ध नहीं रक्खा। अब वह गाँव के लोगों को पहले की भाँति दिखाई नहीं देता था। जब वह सन्ध्या के समय निर्जन नदी तट पर जल्दी जल्दी चलता हुआ अपना पाठ कण्ठ किया करता था, तब उसका उपासक बालक-सम्प्रदाय

दूर ही से कुछ दुःखी चित्त से आदरपूर्वक उसे देखा करता था; उसके पाठ में बाधा देने का उसे साहस नहीं होता था।

चारु को भी आजकल वह बहुत अधिक नहीं दिखाई देता था। पहले तारापद अंतःपुर में जाकर अन्नपूर्णा की स्नेह-पूर्ण दृष्टि के सामने बैठकर भोजन किया करता था। पर इसके कारण बीच बीच में उसे कुछ विलम्ब हो जाया करता था; इसलिए उसने मोतीलाल बाबू से अनुरोध करके अपने लिये बाहर ही भोजन मँगाने की व्यवस्था कर ली थी। इस पर अन्नपूर्णा ने दुःखी होकर विरोध भी किया था; परन्तु मोतीलाल बाबू पढ़ने लिखने में बालक का उत्साह देखकर बहुत सन्तुष्ट थे; इसलिए उन्होंने इस व्यवस्था का अनुमोदन कर दिया था।

उसी समय चारु भी सहसा ज़िद कर बैठी कि मैं भी अँगरेज़ी पढ़ूँगी। उसके माता-पिता ने पहले अपनी अल्हड़ लड़की के इस प्रस्ताव को परिहास का विषय समझा और वे स्नेहपूर्वक हँस पड़े; परन्तु कन्या ने उस प्रस्ताव के परिहास्य अंश को प्रचुर अश्रुजल की धारा से बहुत ही जल्दी धोकर दूर कर दिया। अन्त में इन स्नेहदुर्बल निरुपाय अभिभावकों ने बालिका का वह प्रस्ताव गम्भीर भाव से स्वीकार कर लिया। अब चारु भी तारापद के साथ ही मास्टर साहब से अँगरेजी पढ़ने लगी।

परन्तु पढ़ना लिखना इस अस्थिरचित्त बालिका के स्वभाव के अनुकूल नहीं था। वह स्वयं तो कुछ भी न सीखती, हाँ, तारापद के सीखने में बाधा अवश्य डालने लगी। वह पिछड़ जाती थी और अपना पाठ कण्ठ नहीं करती थी; पर फिर भी किसी प्रकार तारापद से पीछे नहीं रहना चाहती थी। जब तारा-

पर उससे आगे बढ़कर नया पाठ सीखने लगता था, तब वह बहुत नाराज होती थी; यहाँ तक कि रोने धोने से भी बाज नहीं आती थी। जब तारापद एक पुरानी पुस्तक समाप्त करके दूसरी नई पुस्तक खरीदने लगता था, तब उसके लिए भी नई पुस्तक खरीदनी पड़ती थी। तारापद फुरसत के समय अपनी कोठरी में बैठकर लिखा करता था और अपना पाठ कण्ठ किया करता था। पर उस ईर्ष्या-परायणा बालिका को यह बात सह्य नहीं होती थी। वह छिपकर उसकी लिखने की कापी पर स्याही गिरा देती थी; कलम कहीं छिपाकर रख दिया करती थी; यहाँ तक कि पुस्तक का जो पृष्ठ वह पढ़ता था, वह पृष्ठ ही फाड़ दिया करती थी। तारापद बहुत ही कौतुकपूर्वक इस बालिका का यह सब दौरात्म्य सहन किया करता था। जब उसे बहुत असह्य हो जाता था, तब वह कभी कभी उसे थोड़ा बहुत मार भी बैठता था; पर फिर भी किसी प्रकार उसका शासन नहीं कर सकता था।

संयोग से एक उपाय निकल आया। तारापद एक दिन बहुत ही विरक्त होकर स्याही गिरी हुई अपनी लिखने की कापी फाड़कर बहुत ही दुःखी, पर गम्भीर भाव से बैठा हुआ था। इतने में चारु दरवाजे पर आकर खड़ी हो गई। वह मन ही मन सोचती थी कि आज मुझे जरूर मार पड़ेगी। परन्तु उसकी वह आशा पूरी नहीं हुई। तारापद ने उससे बात तक न की और वह चुपचाप बैठा रहा। बालिका कभी तो कोठरी के अन्दर आती थी और कभी बाहर जाती थी। वह बार बार उसके बहुत पास पहुँच जाती थी। यदि तारापद चाहता, तो सहज में ही उसकी पीठ पर धौल जमा सकता था। परन्तु उसने ऐसा

नहीं किया और वह चुपचाप गम्भीर भाव धारण किये हुए बैठा रहा। बालिका बहुत मुश्किल में पड़ गई। क्षमा-प्रार्थना किस प्रकार की जाती है, इस विद्या का तो उसने आज तक कभी कोई अभ्यास किया ही नहीं था; और उसका अनुतप्त क्षुद्र हृदय अपने सहपाठी से क्षमा प्राप्त करने के लिये बहुत अधिक कातर हो रहा था। अन्त में कोई उपाय न देखकर उसने उस फटी हुई कापी का एक टुकड़ा उठा लिया और तारापद के पास बैठकर उस पर बहुत बड़े बड़े अक्षरों में लिखा—अब मैं कभी कापी पर स्याही न गिराऊँगी। जब वह लिख चुकी, तब उस लेख की ओर तारापद का ध्यान आकर्षित करने के लिये वह अनेक प्रकार की चंचलताएँ करने लगी। यह देखकर तारापद अपनी हँसी न रोक सका। वह ठठाकर हँस पड़ा। उस समय बालिका लज्जा और क्रोध से पागल हो गई और जल्दी से दौड़कर कोठरी के बाहर चली गई। उसके हृदय का वह निदारुण क्षोभ तभी मिट सकता था जब कि वह कागज के उस टुकड़े को, जिस पर उसने अपने हाथ से लिखकर दीनता प्रकट की थी, अनन्त काल और अनन्त जगत् से पूर्ण-रूप से विनष्ट कर सकती।

उधर संकुचित-चित्त सोनामणि दो एक दिन आकर उस कमरे में बाहर ही से ताक झाँक कर चली गई थी, जिस कमरे में तारापद के साथ चारु पढ़ा करती थी। सखी चारुशशि के साथ सभी बातों में उसकी बहुत अधिक घनिष्ठता थी; परन्तु तारापद के सम्बन्ध में वह चारु को बहुत अधिक भय और सन्देह की दृष्टि से देखा करती थी। चारु जिस समय अन्तःपुर में रहती

थी। वही समय देखकर सोनामणि संकोचपूर्वक तारापद के दरवाजे के पास आकर खड़ी होती थी। तारापद पढ़ना छोड़कर सिर उठाकर स्नेहपूर्वक पूछा करता था—क्यों सोना, क्या हाल चाल है? मौसी कैसी हैं?

सोनामणि कहती—तुम तो इधर बहुत दिनों से आते ही नहीं। माँ ने तुमको जरा बुलाया है। माँ की कमर में दर्द है, इसीलिए वह तुम्हें देखने के लिए यहाँ नहीं आ सकतीं।

ऐसे ही समय में यदि सहसा चारु वहाँ आ पहुँचती तो सोनामणि हक्की बक्की सी होकर रह जाती। मानो वह छिपकर अपनी सखी की सम्पत्ति चुराने के लिये आई हो। चारु अपना स्वर सप्तम पर चढ़ाकर कहती—क्यों सोना, तुम पढ़ने के समय दिक करने के लिये आई हो? मैं अभी जाकर बाबू जी से कह दूँगी। चारु मानो स्वयं ही तारापद की प्रवीण अभिभाविका हो। मानो दिन रात उसका ध्यान केवल इसी बात पर रहता था कि तारापद के पढ़ने लिखने में लेश मात्र भी बाधा न पड़े। परन्तु वह स्वयं किस अभिप्राय से इस असमय में तारापद के पढ़ने के कमरे में आ पहुँचती थी, यह अन्तर्यामी के लिये अगोचर नहीं था और तारापद भी अच्छी तरह जानता था। परन्तु बेचारी सोनामणि बहुत ही भयभीत होकर तुरन्त ही एक बिलकुल झूठी कैफियत गढ़ लेती थी। अन्त में चारु जब घृणापूर्वक उसे मिथ्यावादी ठहराती, तब वह लज्जित, शंकित और पराजित होकर व्यथित हृदय से वहाँ से चली जाती थी। दयार्द्र तारापद उसे बुलाकर कहा करता—सोना, आज सन्ध्या समय मैं तुम्हारे घर आऊगा। चारु नागिन की तरह फुफकारकर गरज उठती—

हाँ, हाँ, जाओगे क्यों नहीं ! पढ़ो लिखोगे कुछ नहीं न ? अच्छा देखो आज मैं मास्टर साहब से कहूँगी।

चारु के इस शासन से तारापद कुछ भी भयभीत नहीं होता था और वह दो एक दिन सन्ध्या के समय उस ब्राह्मणी के घर गया भी। तीसरी या चौथी बार तारापद पर चारु केवल बिगड़कर ही नहीं रह गई, बल्कि उसने एक बार धीरे से तारापद की कोठरी का दरवाजा बाहर से बंद करके सिकड़ी लगा दी और माँ के बक्स में से ताली ताला लाकर उसे बाहर से बन्द कर दिया। सन्ध्या तक तारापद को इस प्रकार ताले में बन्द रखकर भोजन के समय उसने द्वार खोल दिया। तारापद को क्रोध तो आया, पर उसने कुछ कहा नहीं और वह बिना भोजन किये ही वहाँ से चलने का उपक्रम करने लगा। उस समय वह अनुतप्त-हृदय और व्याकुल बालिका हाथ जोड़कर बहुत ही विनयपूर्वक बार बार कहने लगी—मैं तुम्हारे पैरों पड़ती हूँ, अब कभी ऐसा काम नहीं करूगी। मैं तुम्हारे पैरों पड़ती हूँ, तुम खाकर जाओ। लेकिन जब इतने पर भी तारापद ने नहीं माना, तब वह अधीर होकर रोने लगी। लाचार होकर तारापद लौट आया और भोजन करने लगा।

चारु ने कई बार बहुत ही दृढ़तापूर्वक प्रतिज्ञा की थी कि मैं अब तारापद के साथ सद्व्यवहार किया करूगी और कभी क्षण भर के लिये भी उसे दुःखी न किया करूँगी। पर जब सोनामणि जैसी और भी दो चार लड़कियाँ सामने आ जाती थीं, तब उसका मिजाज न जाने क्यों बिगड़ जाया करता था और वह किसी भी प्रकार से अपने आपको न सँभाल सकती

थी। जब वह लगातार कई दिनों तक भलमनसाहत का व्यवहार करती थी, तब तारापद सतर्क हो जाता था और किसी बहुत बड़े उपद्रव की सम्भावना समझकर उसके लिये तैयार हो रहता था। कोई कह नहीं सकता था कि सहसा किस लिए और किस ओर से आक्रमण होगा। इसके उपरान्त प्रबल आँधी आती थी; आँधी के उपरान्त प्रचुर अश्रुजल की वर्षा होती थी और उसके उपरान्त स्निग्ध शान्ति आ विराजती थी।

(६)

इसी प्रकार प्राय: दो वर्ष बीत गए। इतने लम्बे समय तक तारापद को कभी कोई पकड़कर नहीं रख सका था। जान पड़ता है कि पढ़ने लिखने में उसका मन एक अपूर्व आकर्षण से बद्ध हो चुका था। जान पड़ता है कि अवस्था बढ़ने के साथ ही साथ उसकी प्रकृति में भी परिवर्तन होना आरम्भ हो गया था, स्थायी रूप से बैठकर संसार की सुख-स्वच्छन्दता का भोग करने की ओर उसका मन लग गया था। जान पड़ता है, उसकी सहपाठिका बालिका का नियत दौरात्म्य चञ्चल सौन्दर्य अलक्षित भाव से उसके हृदय पर अपना बन्धन दृढ़ कर रहा था।

उधर चारु भी अब ग्यारह बरस से ऊपर की हो गई थी। मोती बाबू ने ढूँढ़ ढाँढ़कर अपनी लड़की के विवाह के लिए दो तीन अच्छे अच्छे वर देखे थे। जब मोती बाबू ने देखा कि कन्या के विवाह का समय समीप आ रहा है, तब उन्होंने उसका पढ़ना लिखना और बाहर आना जाना बन्द कर दिया। यह आकस्मिक अवरोध देखकर चारु ने घर में बहुत बड़ा बखेड़ा खड़ा कर दिया।

इस पर एक दिन अन्नपूर्णा ने मोती बाबू को बुलाकर कहा—तुम वर के लिये इतनी अधिक चिन्ता और ढूँढ़ खोज क्यों कर रहे हो ? तारापद तो बहुत अच्छा लड़का है और तुम्हारी लड़की को भी वह पसन्द है ।

अन्नपूर्णा की यह बात सुनकर मोती बाबू ने बहुत अधिक आश्चर्य प्रकट किया । उन्होंने कहा—भला यह कैसे हो सकता है ? तारापद के कुल-शील का कुछ भी पता नहीं । मेरी एक ही एक लड़की ठहरी । मैं उसे अच्छे घर देना चाहता हूँ ।

एक दिन रायडाँगा के बाबू के यहाँ से कुछ लोग लड़की को देखने के लिए आए । चारु को कपड़े लत्ते पहनाकर बाहर लाने की चेष्टा की गई; परन्तु वह जाकर अपने सोने के कमरे में दरवाजा बन्द करके चुपचाप बैठ गई, किसी प्रकार बाहर ही न निकली । मोती बाबू ने कमरे के बाहर से बहुत अनुनय विनय करके डाँट डपटकर बाहर निकालना चाहा; पर फल कुछ भी नहीं हुआ । अन्त में उन्हें बाहर आकर रायडाँगे से आये हुए आदमियों से झूठ बोलना पड़ा । उन्हें कहना पड़ा कि अचानक लड़की की तबीयत बहुत खराब हो गई है । इसलिए आज हम लड़की नहीं दिखला सकते । उन लोगों ने सोचा कि लड़की में शायद कोई दोष है; इसी लिए इन्होंने यह चालाकी खेली है और यह बहाना किया है ।

तब मोती बाबू सोचने लगे कि तारापद देखने सुनने में सभी बातों में बहुत अच्छा लड़का है । इसे मैं अपने घर में भी रख सकूँगा । उस दशा में मुझे अपनी एक मात्र लड़की पराए घर न भेजनी पड़ेगी । उन्होंने यह भी सोचा कि इस अशान्त अबाध्य

लड़की की यह उद्दण्डता हमारी स्नेह-पूर्ण दृष्टि में चाहे कितनी ही क्षम्य क्यों न जान पड़ती हो, पर ससुराल में उसकी ये सब बातें कोई न सहेगा।

तब पति-पत्नी ने बहुत कुछ सोच विचार कर तारापद के घर उसके कुल के सम्बन्ध की सब बातों का पता लगाने के लिये एक आदमी भेजा। वहाँ से समाचार आया कि वंश तो अच्छा है, पर गरीब है। तब मोती बाबू ने लड़के की माँ और भाइयों के पास विवाह का प्रस्ताव भेजा। उन्होंने बहुत ही प्रसन्न होकर सम्मति देने में क्षणभर का भी विलम्ब नहीं किया।

अब मोती बाबू और अन्नपूर्णा दोनों मिलकर यह सोचने लगे कि विवाह कब हो। परन्तु मोती बाबू स्वभाव से ही गोपनताप्रिय और सावधान रहनेवाले आदमी थे। उन्होंने सब बातें बहुत ही गुप्त रक्खीं।

चारु किसी प्रकार रोककर रक्खी ही नहीं जा सकती थी। वह बीच बीच में मराठों की घुड़सवार सेना की तरह तारापद के पढ़ने के कमरे में जा पहुँचा करती थी। वह कभी राग, कभी अनुराग और कभी विराग द्वारा उसकी पाठचर्या की एकान्त शान्ति सहसा भंग कर दिया करती थी। इसीलिए आजकल इस निर्लिप्त और मुक्तस्वभाव ब्राह्मण बालक के चित्त में बीच बीच में क्षणभर के लिये विद्युत् के स्पन्दन की भाँति एक अपूर्व चंचलता का संचार हो जाया करता था। जिस व्यक्ति का लघुभार चित्त सदा अटूट अव्याहत भाव से काल-स्रोत की तरंगों में उतराता हुआ केवल सामने की ओर ही बहा चला जाता था, वह आजकल रह रहकर अन्यमनस्क हो उठता था और विचित्र

दिवा-स्वप्न के जाल में जकड़ जाता था। वह दिन दिन भर पढ़ना लिखना छोड़कर मोती बाबू की लाइब्रेरी में पहुँचकर तसवीरों-वाली पुस्तकों के पन्ने उलटा करता था। उन चित्रों के संयोग से जिस कल्पित जगत् की सृष्टि होती थी, वह उसके पहलेवाले जगत् से बिलकुल अलग और रंगीन था। चारु का अद्भुत आचरण देखकर अब वह पहले की तरह हँस नहीं सकता था। वह जब कभी किसी प्रकार की दुष्टता करती थी, तब उसे मारने पीटने का विचार अब उसके मन में उठता ही नहीं था। अपना यह निगूढ परिवर्तन और आबद्ध आसक्त भाव उसे एक नवीन स्वप्न के समान जान पड़ने लगा था।

श्रावण मास में विवाह के लिये एक शुभ दिन स्थिर करके बाबू मोतीलाल ने तारापद की माता और भाइयों को लाने के लिये आदमी भेजा, पर तारापद को इस बात की कोई खबर न होने दी। अपने कलकत्तेवाले गुमाश्ते को उन्होंने बढ़िया बाजे आदि का बयाना देने का आदेश लिख भेजा और साथ ही दूसरी अनेक आवश्यक चीजों की फेहरिस्त भी तैयार करके भेज दी।

आकाश में नवीन वर्षा के बादल उठे। गाँव की नदी इतने दिनों में प्राय: बिलकुल सूख गई थी। बीच बीच में कहीं कहीं किसी कुण्ड या गड्ढे में पानी दिखलाई देता था। छोटी छोटी नावें उसी कीचड़भरे पानी में पड़ी हुई थीं और जिस स्थान पर नदी का पाट बिलकुल सूख गया था, उस स्थान पर बैलगाड़ियों आदि के आने जाने से पहियों के कारण गहरी लकीरें पड़ गई थीं। ऐसे समय में एक दिन पितृगृह से लौटकर आनेवाली पार्वती के समान कहीं से द्रुतगामिनी जलधारा कल-

कलहास्य करती हुई गाँव के शून्य वक्ष पर आ पहुँची। नंगे बालक और बालिकाएँ नदी तट पर आकर जोर जोर से चिल्लाते हुए नाचने लगे। वे सब अतृप्त आनन्द से बार बार जल में कूदकर नदी को मानो आलिंगन करते हुए पकड़ने लगे। कुटीरों में रहनेवाली स्त्रियाँ अपनी परिचित संगिनी को देखने के लिये बाहर निकल आईं। मानो शुष्क और निर्जीव ग्राम में न ज़ाने कहाँ से प्राण की एक विपुल तरंग ने आकर प्रवेश किया। बोझ से लदी हुई छोटी बड़ी अनेक नावें देश विदेश से आने लगीं। सन्ध्या समय घाट पर विदेशी मल्लाहों के संगीत की ध्वनि उठने लगी। नदी के दोनों तटों की गाँव-रूपी कन्याएँ साल भर अपने एकान्त कोनों में अपनी छोटी सी गृहस्थी लेकर अकेली दिन बिताया करती हैं। वर्षा के समय बाहरी विशाल पृथ्वी अनेक प्रकार के विचित्र पण्य-रूपी उपहार लेकर और गैरिक रंग के जलरथ पर चढ़कर इन ग्राम-कन्याओं की खबर लेने के लिये आती हैं। उस समय जगत् के साथ इनकी जो आत्मीयता हो जाती है, उसके गर्व से कुछ दिनों के लिये इनकी क्षुद्रता मानो नष्ट हो जाती है। सभी मानो सचल, सजग और सजीव हो उठती हैं और मौन-निस्तब्ध देश में सुदूर के राज्यों की कलालाप ध्वनि आकर चारों ओर के आकाश को आन्दोलित कर देती है।

इसी समय कुडुलकाँटा के नाग बाबू के इलाक़े में रथ-यात्रा का प्रसिद्ध मेला था। चाँदनीवाली सन्ध्या में तारापद ने घाट पर जाकर देखा कि कोई नाव हिंडोला या चरखी लिये, कोई बिक्री का सौदा सुलुफ लिये प्रबल नवीन स्रोतों में होती हुई मेले की ओर जा रही है। कलकत्ते के कन्सर्ट दल ने जोर जोर

से अपने बाजे बजाने आरम्भ कर दिये हैं। रासधारी हारमोनियम और बेला बजाकर गीत गा रहे हैं और सम आने पर हा हा करते हुए चिल्ला उठते हैं। पश्चिम की नावों के मल्लाह केवल ढोल और करताल लेकर ही उन्मत्त उत्साह से बिना संगीत के ही चिल्ला कर आकाश गुँजा रहे हैं। उनके उद्दीपन की कोई सीमा ही नहीं है। देखते देखते पूर्व दिशा से घने बादल काले पाल उड़ाते हुए आकाश के मध्य में आ पहुँचे। चन्द्रमा उन बादलों में छिप गया। पुरवा हवा जोरों से बहने लगी। बादल के पीछे बादल बढ़ते हुए चलने लगे। नदीतट की हिलती हुई वन-श्रेणी में घोर अन्धकार छा गया। मेंढक बोलने लगे। झिल्लियों की ध्वनि मानों करोंत से उस अन्धकार को चीरने लगी। सामने आज मानो सारे जगत् की रथयात्रा थी। चक्र घूम रहे थे, ध्वजाएँ उड़ रही थीं, पृथ्वी काँप रही थी, बादल मँड़रा रहे थे, हवा जोरों से चल रही थी, नदी बह रही थी, नावें चली जा रही थीं, संगीत हो रहा था। देखते देखते बादल जोरों से गरजने लगे। बिजली आकाश को काट काट कर चमकने लगी। बहुत दूर से अन्धकार में से मूसलधार वृष्टि होने की सूचना मिलने लगी। केवल नदी के एक तट पर एक कोने में पड़ा हुआ काँठाल गाँव अपनी कुटी का द्वार बन्द करके और दीपक बुझाकर चुपचाप सोने लगा।

दूसरे दिन तारापद की माता और सब भाई आकर काँठाल में नाव पर से उतरे। उसके दूसरे दिन अनेक प्रकार की सामग्री से लदी हुई तीन नावें कलकत्ते से आकर काँठाल के जमींदार की छावनी के सामने घाट पर आ लगीं। इसके तीसरे दिन

बहुत सबेरे सोनामणि एक कागज पर कुछ आम्रसत्त्व (सुखाया हुआ आम का रस) और दोने में थोड़ा सा अचार लिये हुए डरती डरती तारापद के पढ़ने के कमरे के दरवाजे पर चुपचाप आकर खड़ी हो गई। पर उस दिन तारापद कहीं किसी को दिखलाई नहीं दिया। इससे पहले ही कि स्नेह, प्रेम और बन्धुत्व के षड्यंत्र का बन्धन उसे चारों ओर से पूरी तरह से घेर लेता, समस्त गाँव का हृदय चुराकर वर्षा ऋतु की अँधेरी रात में वह ब्राह्मण बालक आसक्तिविहीन और उदासीन जननी विश्वपृथ्वी के पास चला गया।

(रवीन्द्र-कथा कुञ्ज से)

छठवाँ गुच्छ

हाकिमों के दौरे

जिस भाँति, सूर्य्यास्त के पीछे एक विशेष प्रकार के जीवधारी जो न पशु हैं न पक्षी, जीविका के खोज में निकल पड़ते हैं; अपनी लम्बी श्रेणियों से आकाश-मण्डल को अच्छादित कर देते हैं, उसी भाँति कार्तिक का आरम्भ होते ही एक अन्य प्रकार के जन्तु देहातों में निकल पड़ते हैं और अपने खेमों तथा छोलदारियों से समस्त ग्राम-मण्डल को उज्ज्वल कर देते हैं। वर्षा के आदि में राजसिक कीट और पतङ्ग का उद्भव होता है, उसके अन्त में तामसिक कीट और पतङ्ग का। उनका उत्थान होते ही देहातों में भूकम्प सा आ जाता है और लोग भय से प्राण छिपाने लगते हैं।

इसमें सन्देह नहीं कि अधिकारियों के यह दौरे सदिच्छाओं से प्ररित होकर होते हैं। उनका अभिप्राय है जनता की वास्तविक दशा का ज्ञान प्राप्त करना, न्याय को न्यायप्रार्थी के द्वार तक पहुँ-चाना, प्रजा के दु:खों को सुनना, उनकी आवश्यकताओं को देखना, उनके कष्टों का अनुमान करना, उनके विचारों से परिचित होना। यदि यह अर्थ सिद्ध होते तो यह दौरे वसन्तकाल से भी अधिक प्राणपोषक होते, लोग वीणा और पखावज से ढोल मजीरे से, उनका अभिवादन करते। किन्तु जिस भाँति प्रकाशन की रश्मियाँ

पानी में वक्रगामी हो जाती हैं, उसी भाँति सदिच्छायें भी बहुधा मानवी दुर्बलताओं के सम्पर्क से विषम हो जाया करती हैं। सत्य और न्याय पैरों के नीचे आ जाता है, लोभ और स्वार्थ की विजय हो जाती है। अधिकारी वर्ग और उनके कर्मचारी विरहिणी की भाँति इस सुखकाल के दिन गिना करते हैं। शहरों में तो उनकी दाल नहीं गलती, या गलती है तो बहुत कम। वहाँ प्रत्येक वस्तु के लिये उन्हें जेब में हाथ डालना पड़ता है, किन्तु देहातों में जेब की जगह उनका हाथ अपने सोटे पर होता है या किसी दीन किसान की गरदन पर। जिस घी, दूध, शाक भाजी, माँस मछली आदि के लिये शहर में तरसते थे, जिनका स्वप्न में भी दर्शन नहीं होता था, उन पदार्थों की यहाँ केवल जिह्वा और बाहु के बल से रेलपेल हो जाती है। जितना खा सकते हैं खाते हैं, बार बार खाते हैं और जो नहीं खा सकते वह घर भेजते हैं। घी से भरे हुए कनस्टर, दूध से भरे हुए मटके, उपले और लकड़ी, घास और चारे से लदी हुई गाड़ियाँ शहरों में आने लगती हैं। घरवाले हर्ष से फूले नहीं समाते, अपने भाग्य को सराहते हैं, क्योंकि अब दुःख के दिन गये और सुख के दिन आये। उनकी तरी वर्षा के पीछे आती है, वह खुश्की में तरी का आनन्द उठाते हैं। देहातवालों के लिये यह बड़े संकट के दिन होते हैं, उनकी शामत आ जाती है, मार खाते हैं, बेगार में पकड़े जाते हैं, दासत्व के दारुण निर्दय आघातों से आत्मा का भी ह्रास हो जाता है।

अगहन का महीना था। साँझ हो गयी थी। कादिरखाँ के द्वार पर अलाव लगी हुई थी। कई आदमी उसके इर्द गिर्द बैठे हुए बातें कर रहे थे। कादिर ने बाजार के तम्बाकू की निन्दा की,

दुखरन भगत ने उनका अनुमोदन किया। इसके बाद डपटसिंह पत्थर और बेलन के कोल्हुओं के गुण दोष की विवेचना करने लगे। अन्त में लोहे ने पत्थर पर विजय पायी।

दुखरन बोले, आजकल रात को मटर में सियार और हरिन बड़ा उपद्रव मचाते हैं। जाड़े के मारे उठा नहीं जाता।

कादिर—अब की ठंढ बहुत पड़ेगी। दिन को पछुआ चलता है, मेरे पास तो कोई कम्बल भी नहीं, वही एक दोहर लपेटे पड़ा रहता हूँ। पुवाल न हो गया होता तो रात को अकड़ जाता।

डपट—यहाँ किस के पास कम्बल है। उसी एक पुराने धुस्से की भुगुत है। लकड़ी भी इतनी नहीं मिलती कि रातभर ताप ही कर काटें।

मनोहर—अब की बेटी के ब्याह में इमली का पेड़ तो कटवाया था। क्या सब जल गयी?

डपट—नहीं बची तो बहुत थी पर कल डिप्टी ज्वालासिंह के लश्कर में चली गयी। खाँ साहब से कितना कहा कि इसे मत ले जाइये, पर उनकी बला सुनती है। चपरासियों को ढेर दिखा दिया। बात की बात में सारी लकड़ी उठ गयी।

मनोहर—तुमने चपरासियों से कुछ कहा नहीं?

डपट—क्या कहता, दस पाँच मन लकड़ी के पीछे अपनी जान सांसत में डालता, गालियाँ खाता, लश्कर में पकड़ जाता, मार पड़ती ऊपर से। तब तुम भी पास न फटकते। दोनों लड़के और झपट तो गरम पड़े थे लेकिन मैंने उन्हें डाँट दिया। जबर-दस्त का ठेंगा सिर पर।

कादिर—हाकिमों का दौरा क्या है हमारी मरन है। बकरीद में

कुर्बानी के लिये जो बकरा पाल रखा था वह कल लश्कर में पकड़ गया। रब्बी बूचड़ पाँच रुपये नगद देता था मगर मैंने न दिया था। इस बखत सात से कम का माल न था।

मनोहर—यह लोग बड़ा अन्धेर मचाते हैं; आते हैं इन्तजाम करने, इन्साफ करने, लेकिन हमारे गले पर छुरी चलाते हैं। इससे कहीं अच्छा तो यही था कि दौड़े बन्द हो जाते। यही न होता मुकदमेवालों को सदर जाना पड़ता, इस सांसत से तो जान बचती।

कादिर—इसमें हाकिमों का कसूर नहीं। यह सब उनके लस्करवालों की धाँधली है। वही सब हाकिमों को भी बदनाम कर देते हैं।

मनोहर—कैसी बात कहते हो दादा, यह सब मिली भगत है। हाकिम का इसारा न हो तो मजाल है कि कोई लस्करी परायी चीज पर हाथ डाल सके। सब कुछ हाकिमों की मरजी से होता है और उनकी मरजी क्यों न होगी, सेंत का माल किसको बुरा लगता है?

डपट—ठीक बात है। जिसकी जितनी आमद होती है वह उतना ही और मुँह फैलाता है।

दुखरन—परमात्मा यह अंधेर देखते हैं और कोई जतन नहीं करते। देखें विसेसर साह को अब की कितनी घटी आती है।

डपट—परसाल तो पूरी तीन सौ की चपत पड़ी थी। वही अब की भी समझो, अगर जिन्स ही तक रहे तो इतना घाटा न पड़े मगर वहाँ तो इलायची, कत्था, सुपारी, मेवा और मिस्री सभी

कुछ चाहिए और सब टके सेर। लोग खाने के इतने सौकीन बनते हैं पर यह नहीं होता कि यह सब चीजें अपने साथ रखें।

मनोहर—सहर में खरे दाम लगते हैं, यहाँ कौन, जी में आया दिया न दिया।

कादिर—कल लस्कर का एक चपरासी विसेसर के यहाँ सागूदाना माँग रहा था। विसेसर हाथ जोड़ता था, पैरों पड़ता था कि मेरे यहाँ सागू नहीं है लेकिन चपरासी एक न सुनता था। कहता था जहाँ से चाहो मुझे लाकर दो। गालियां देता था, डंडा दिखाता था। बारे बलराज पहुँच गया। जब वह कड़ा पड़ा तो चपरासी मियाँ नरम पड़े और भुनभुनाते चले गये।

दुखरन—विसेसर की तो एक बार अच्छी तरह मरम्मत हो जाती तो अच्छा होता। गाँव भर का गला मरोरता है, यह उसी की सजा है।

डपट—और हम तुम किसका गला मरोरते हैं?

मनोहर ने चिन्तित भाव से कहा, बलराज अब सरकारी आदमियों के मुँह आने लगा। कितना समझा के हार गया मानता ही नहीं।

कादिर—यह उमिर ही ऐसी होती है।

यही बातें हो रही थीं कि एक बटोही आकर अलाव के पास खड़ा हो गया। उसके पीछे पीछे एक बुढ़िया लाठी टेकती हुई आयी और अलाव से जरा दूर सिर झुकाकर बैठ गयी।

कादिर ने पूछा कहो भाई कहाँ घर है?

घर तो है देवरी पार, अपनी बुढ़िया माता को लिये अस-पताल जाता था, मगर वह जो सड़क के किनारे बगीचे में डिपटी

साहेब का लस्कर उतरा है, वहाँ पहुँचा तो चपरासियों ने गाड़ी रोक ली और हमारे कपड़े लत्ते फेंक फाँककर लकड़ी लादने लगे। कितनी अरज बिनती की, बुढ़िया बीमार है, भर रात का चला हूँ, आज असपताल न पहुँचा तो कल न जाने इसका क्या हाल हो। मगर कौन सुनता है। मैं रोता ही रहा वहाँ गाड़ी लद गयी। तब मुझसे कहने लगे गाड़ी हाँक। क्या करूँ, अब गाड़ी हाँककर सदर जा रहा हूँ। बैल और गाड़ी उनके भरोसे छोड़-कर आया हूँ। जब लकड़ी पहुँचा के लौटूंगा तब असपताल जाऊगा। तुम लोगों से हो सके तो बुढ़िया के लिये एक खटिया दे दो और वहीं पड़ रहने का ठिकाना बता दो, इतना पुण्य करो, मैं बड़ी विपत्तियों में हूँ।

दुखरन—यह बड़ा अंधेर है। यह लोग आदमी काहे के, पूरे राक्षस हैं जिन्हें दया धरम का विचार नहीं।

डपट—दिनभर के थके मादे बैल हैं न जाने कहाँ गाड़ी ले जानी पड़ेगी और न जाने कब लौटोगे। तब तक बूढ़ी अकेली पड़ी रहेगी? जाने कैसी पड़े कैसी न पड़े। हम लोग कितना ही तो पराये ही हैं, घर के आदमी की और बात है।

मनोहर—मेरा तो ऐसा जी चाहता है कि इसी दम डिप्टी साहेब के सामने चला जाऊं और ऐसी खरी खरी सुनाऊँ कि वह भी याद करें। बड़े हाकिम की पोंछ बने हैं। इन्साफ तो क्या करेंगे उल्टे और गरीबों को पीसते हैं। खटिया की तो कोई बात नहीं और जगह का भी कल्यान नहीं, लेकिन यह अकेले रहेंगी कैसे।

बटोही—कैसे बताऊँ। जो भाग्य में लिखा है वह होगा।

मनोहर—यहाँ से कोई तुम्हारी गाड़ी हाँक ले जाय तो कोई हरज है ?

बटोही—ऐसा हो जाय तो क्या पूछना। है कोई आदमी ?

मनोहर—आदमी बहुत हैं, कोई न कोई चला जायगा।

कादिर—तुम्हारा हलवाहा तो खाली है, उसे भेज दो।

मनोहर—हलवाहे से बैल सधें न सधे, मैं ही चला जाऊँगा।

कादिर—तुम्हारे ऊपर मुझे विश्वास नहीं आता। कहीं झगड़ा कर बैठो तो और बन जाय। दुखरन भगत, तुम चले जाओ तो अच्छा हो।

दुखरन ने नाक सिकोड़कर कहा, मुझे तो जानते हो रात को कहीं नहीं जाता। भजन भाव का यही बेला है।

कादिर—चला तो मैं जाता लेकिन मेरा मन कहता है कि बूढ़ी को अच्छा करने का जस मुझी को मिलेगा। कौन जाने अल्लाह को यही मंजूर हो। मैं उन्हें अपने घर लिये जाता हूँ। जो कुछ बन पड़ेगा करूँगा। गाड़ी हसन से हँकवाये देता हूँ। बैलों को चारा पानी देना है, बलराज को थोड़ी देर के लिये भेज देना।

कादिर के बरोठे में वृद्धा की चारपाई पड़ गयी। कादिर का लड़का हसनू गाड़ी हाँकने के लिये पड़ाव की तरफ चला। इतने में सुक्खू चौधरी और गौसखाँ दो चपरासियों के साथ आते दिखाई दिये। दूसरी ओर से बलराज भी आकर खड़ा हो गया।

गौसखाँ ने कहा, सब लोग यहाँ बैठे गलचौड़ कर रहे हो कुछ लश्कर की भी खबर है। देखो यह चपरासी लोग दूध के लिये आये हैं, उसका बन्दोबस्त करो।

कादिर—कितना दूध चाहिए ?

एक चपरासी—कम से कम १० सेर।

कादिर–दस सेर! इतना दूध तो चाहे गाँव भर में न निकले। दो ही चार आदमियों के पास तो भैंसें हैं और वह भी धुधार नहीं हैं। मेरे यहाँ तो दोनों जून में सेर भर से ज्यादा नहीं होता।

चपरासी—भैंसें हमारे सामने लाओ, दूध तो हमारा चपरास निकालता है। हम तो पत्थर से दूध निकाल लें, चोरों के पेट की बात तक निकाल लेते हैं, भैंसें तो फिर भैंसें हैं। इस चपरास में वह जादू है कि चाहें तो जंगल में मंगल कर दें, लाओ भैंसें यहाँ खड़ी करो।

गौसखाँ–इतने तूल कलाम की क्या जरूरत है, दूध का इन्तजाम हो जायगा। दो सेर सुक्खू देने को कहते हैं, कादिर के यहाँ भी दो सेर मिल ही जायगा, दुखरन, भगत दो सेर दे देंगे, मनोहर और डपटसिंह भी दो दो सेर दे देंगे, बस हो गया दस सेर।

कादिर—मैं दो सेर चार सेर का बीमा नहीं लेता। यह दोनों भैंसें खड़ी हैं। जितना दूध दे दें उतना ले लिया जाय।

दुखरन—मेरी तो दोनों भैंसें गाभिन हैं। बहुत देंगी तो आध सेर। पुवाल तो खाने को पाती हैं। और यह भी आधे पेट, कहीं चराई है नहीं। दूध कहाँ से हो।

डपटसिंह—सुक्खू चौधरी जितना देते हैं उसका आधा मुझसे ले लीजिए। हैसियत ही के हिसाब से न लीजिएगा।

गौसखाँ–तुम लोगों की यह निहायत बेहूदा आदत है कि हर बात में लागडांट करने लगते हो। शराफत और नरमी से

आधा भी न दोगे लेकिन सखती से पूरा लिये हाजिर हो जाओगे। मैंने तुमसे दो सेर कह दिया है इतना तुम्हें देना होगा।

डपट—इस तरह आप मालिक हैं भैंसें खोल ले जाइये, लेकिन दो सेर दूध मेरे यहाँ न होगा।

गौसखाँ—मनोहर तुम्हारी भैंसें तो दुधार हैं।

मनोहर ने अभी जवाब न दिया था कि बलराज बोल उठा, मेरी भैंसें बहुत दुधार हैं, मन भर दूध देती हैं, लेकिन बेगार के नाम से छटाँक भर भी न देंगी।

मनोहर—तू चुपचाप क्यों नहीं रहता, तुझसे कौन पूछता है। हमसे जितना हो सकेगा देंगे; तुम से मतलब?

चपरासी ने बलराज की ओर अपमान-जनक क्रोध से देखकर कहा—महतो, अभी हम लोगों के पंजे में नहीं पड़े हो। एक बार पड़ जाओगे तो आटे दाल का भाव मालूम हो जायगा। मुँह से बात न निकलेगी।

दूसरा चपरासी—मालूम होता है सिर पर गरमी चढ़ गयी है, जभी इतना ऐंठ रहा है! इसे लस्कर ले चलो तो गरमी उतर जाय।

बलराज ने मर्माहत होकर कहा, मियाँ हमारी गरमी पाँच पाँच रुपल्ली के चपरासियों के मान की नहीं है। जाओ अपने साहब बहादुर के जूते सीधे करो जो तुम्हारा काम है, हमारी गरमी के फेर में न पड़ो नहीं तो हाथ जल जायंगे। उस जन्म के पापों का दंड भोग रहे हो लेकिन अब भी तुम्हारी आँखें नहीं खुलतीं।

बलराज ने यह शब्द ऐसे सगर्व गंभीरता से कहे कि दोनों

चपरासी खिसिया से गये। इस घोर अपमान का प्रतिकार करना कठिन था। यह मानों बात को वाणी की परिधि से निकालकर कर्म के क्षेत्र में लाने की ललकार थी। व्यंगाघात शाब्दिक कलह की चरम सीमा है। उसका प्रतिकार मुँह से नहीं, हाथों से होता है। लेकिन बलराज का चौड़ा वक्ष और बृहद् काय देखकर चपरासियों को उससे हाथापाई करने का साहस न हो सका। गौस-खाँ से बोले, खाँसाहेब, आप इस लौंड़े को देखते हैं कैसा बढ़ा जाता है, इसे समझा दीजिए हमारे मुँह न लगे। ऐसा न हो शामत आ जाय और ६ महीने तक चक्की पीसनी पड़े। हम आप लोगों का मुलाहिज़ा करते हैं नहीं तो इस हेकड़ी को मजा चखा देते।

गौसखाँ—सुनते हो मनोहर अपने बेटे की बातें। भला सोचो तो डिपटी साहेब के कानों में यह बात पड़ जाय तो तुम्हारा क्या हाल हो। कहीं एक पत्ती का साया भी न मिलेगा।

मनोहर ने दीनता से खाँ साहेब की ओर देखकर कहा, खाँ साहब, मैं तो इसे सब तरह समझा बुझा के हार गया। जाने क्या करने पर तुला हुआ है। (बलराज से) अरे तू यहां से जायगा कि नहीं?

बलराज—क्यों जाऊँ, मुझे किसी का डर नहीं है। यह लोग डिप्टी साहब से मेरी सिकायत करने की धमकी देते हैं, मैं आप ही उनके पास जाता हूँ। इन लोगों को उन्होंने कभी ऐसा नादिरशाही हुक्म न दिया होगा कि जाकर गाँव में आग लगा दो और मान लें कि वह ऐसा कड़ा हुक्म दे भी दें तो इन लोगों को तो सोचना चाहिये कि यह गरीब किसान हमारे ही

भाई बंद हैं, इन्हें व्यर्थ न सतायें। लेकिन इन लोगों को तो पैसे के लोभ और चपरास के मद ने ऐसा अन्धा बना दिया है कि कुछ सूझता ही नहीं। आज उस बेचारे बनिये की गाड़ी रोक ली। तनिक भी न सोचा कि बेचारी बुढ़िया का क्या हाल होगा, मरेगी कि जियेगी। नौकरी तो की है पाँच रुपये की, काम है बस्ते ढोना, मेज साफ करना, साहब के पीछे २ खिदमतगारों की तरह चलना और बनते हैं रईस।

मनोहर—तू चुप होगा कि नहीं।

एक चपरासी—नहीं इसे खूब गालियाँ दे लेने दो जिसमें इसके दिल की हवस निकल जाय। इसका मजा कल मिलेगा। खाँ साहब आपने सुना है, आपको गवाही देनी पड़ेगी। आप का इतना मुलाहिजा बहुत किया। बतलाइए दूध का कुछ इन्तजाम करते हैं कि हम लोग जायँ?

गौसखाँ—नहीं जी दूध लो, और दस सेर से सेरभर ज्यादा यही लोग झख मारेंगे और देंगे। क्या बतायें आज इस छोकरे की बदौलत हमको तुम लोगों के सामने इतना शरमिन्दा होना पड़ा। इस गाँव की कुछ हवा ही बिगड़ी हुई है। मैं खूब समझता हूँ। यह लोग जो भीगी बिल्ली बने बैठे हुए हैं, इन्हीं के शह देने से इस लौंडे की इतनी जुर्अत हुई है, नहीं तो इसकी मजाल थी कि यों टर्राता। बछड़ा खूँटे ही के बल कूदता है। खैर, अगर मेरा नाम गौसखाँ है तो एकएक से समझूंगा।

इस तिरस्कार का आशातीत प्रभाव हुआ। सब दहल उठें। वह अविनयशीलता जो पहले सब के चेहरों से झलक रही थी

लुप्त हो गयी। मनोहर तो ऐसा सिटपिटा गया मानों सैकड़ों जूते पड़े हों। इस खटाई ने सब के नशे उतार दिये।

कादिरखाँ बोले, मनोहर जाओ जितना दूध हो सब भेज दो।

गौसखाँ—हमको मनोहर के दूध की जरूरत नहीं है।

बलराज—यहाँ देता ही कौन है ?

मनोहर खिसिया गया। उठ खड़ा हुआ और बोला, अच्छा ले अब तू ही बोल, तेरे जी में जो आये वह कर, मैं जाता हूँ। अपना घर द्वार सँभाल, मेरा निबाह तेरे साथ न होगा, चाहे घर को रख चाहे आग लगा दे।

यह कहकर वह सशंक क्रोध से भरा हुआ वहाँ से चल दिया। बलराज भी धीरे धीरे अपने अखाड़े की ओर चला। वहाँ इस समय सन्नाटा था। मग्दर की जोड़ी रखी हुई थी। एक पत्थर की नाल जमीन पर पड़ी हुई थी और लेजीम आम की डाल से लटक रहा था। बलराज ने कपड़े उतारे और लंगोट कसकर अखाड़े में उतरा लेकिन आज व्यायाम में उसका मन न लगा। चपरासियों की बातें एक फोड़े की भाँति उसके हृदय में टीस रही थीं। यद्यपि उसने चपरासियों को निर्भय होकर उत्तर दिया था लेकिन उसे इसमें तनिक भी सन्देह न था कि गाँव के अन्य पुरुषों को, यहाँ तक कि मेरे पिता को भी, मेरी बातें उद्दण्ड प्रतीत हुई। सब के सब कैसा सन्नाटा खींचे बैठे रहे। मालूम होता था किसी के मुख में जीभ ही नहीं है। तभी तो यह दुर्गति हो रही है। अगर कुछ दम होता तो आज इतने पीसे कुचले क्यों जाते। और तो और, दादा ने भी मुझी को डाँटा। न जाने इनके मन में इतना डर क्यों समा गया है। पहले तो यह इतने कातर न थे।

कदाचित अब मेरी चिन्ता इन्हें सताने लगी। लेकिन मुझे अवसर मिला तो स्पष्ट कह दूँगा कि तुम मेरी ओर से निश्चिन्त रहो। मुझे परमात्मा ने हाथ पैर दिये हैं। मेहनत कर सकता हूँ और दो को खिलाकर खा सकता हूँ। तुम्हें अगर अपने खेत इतने प्यारे हैं कि उनके पीछे तुम अत्याचार और अपमान सहने पर तैयार हो तो शौक से सहो। लेकिन मैं ऐसे खेतों पर लात मारता हूँ। अपने पसीने की रोटी खाऊँगा और अकड़कर चलूंगा। अगर कोई आँख दिखायेगा तो उसकी आँख निकाल लूंगा। यह बुड्ढा गौसखाँ कैसी आखें लाल पीली कर रहा था। मालूम होता है इनकी मृत्यु मेरे ही हाथों लिखी हुई है। मुझ पर दो चोट कर चुके हैं अब देखता हूँ कौन हाथ निकालते हैं। इनका क्रोध मुझी पर उतरेगा। कोई चिन्ता नहीं, देखा जायगा। दोनों चपरासी मन में फूले न समाये होंगे कि सारा गाँव कैसा रोब में आ गया, पानी भरने को तैयार है। गाँववालों ने भी लल्लो चप्पो की होगी। कोई परवा नहीं। चपरासी मेरा कर ही क्या सकते हैं। लेकिन मुझे कल प्रातःकाल डिप्टी साहब के पास जाकर उनसे सब हाल कह देना चाहिए। विद्वान् पुरुष हैं। दीन मनुष्यों पर उन्हें अवश्य दया आवेगी। अगर वह गाड़ियों के पकड़ने की मनाही कर दें तो क्या पूछना। उन्हें यह अत्याचार कभी पसन्द न आता होगा। यह चपरासी लोग छिपाकर यह जबरदस्ती करते हैं। लेकिन कहीं उन्होंने मुझे अपने इजलास से खड़े खड़े निकलवा दिया तो? बड़े आदमियों को घमण्ड बहुत होता है। कोई हरज नहीं। मैं सड़क पर खड़ा हो जाऊँगा और देखूंगा कि कैसे कोई मुसाफिरों की गाड़ी पकड़ता है। या तो दो

भार का सिर तोड़ के रख दूँगा या आप भी वहीं मर जाऊँगा। अब बिना गरम पड़े काम नहीं चल सकता। वह दादा बुलाने आ रहे हैं।

बलराज अपने बाप के पीछे २ घर पहुँचा। रास्ते में कोई बातचीत नहीं हुई। बिलासी बलराज को देखकर बोली, कहाँ जाके बैट रहे, तुम्हारे दादा कब से खोज रहे हैं। चलो रोटी तैयार है।

बलराज—अखाड़े की ओर चला गया था।

बिलासी—तुम अखाड़े मत जाया करो।

बलराज—क्यों ?

बिलासी—क्यों क्या, देखते नहीं हो सब की आँखों में कैसे खुबते हो। जिन्हें तुम अपना हितू समझते हो यह सब के सब तुम्हारे जान के घातक हैं। तुम्हें आग में ढकेल कर आप तमाशा देखेंगे। आज ही तुम्हें सरकारी आदमियों से भिड़ाकर कैसा दुबक गये।

बलराज ने इस उपदेश का कुछ उत्तर न दिया। चौके पर जा बैठा। उसके एक ओर मनोहर था और दूसरी ओर जरा हटकर उसका हलवाहा रंगी चमार बैठा हुआ था। बिलासी ने जौ की मोटी मोटी रोटियाँ, बथुए का शाक और अरहर की दाल दोनों थालियों में परोस दीं। तब एक फूल के कटोरे में दूध लाकर बलराज के सामने रख दिया।

बलराज—क्या और दूध नहीं है ?

बिलासी—दूध कहाँ है, बेगार में नहीं चला गया ?

बलराज—अच्छा यह कटोरा रङ्गी के सामने रख दो।

बिलासी—तुम खा लो, रङ्गी एक दिन दूध न खायेगा तो दुबला न हो जायगा।

बलराज बेगार का हाल सुनकर क्रोध से आग हो रहा था। कटोरे को उठाकर आँगन की ओर जोर से फेंक दिया। वह तुलसी के चबूतरे से टकराकर टूट गया। बिलासी ने दौड़कर कटोरा उठा लिया और पछताते हुए बोली, तुम्हें आज क्या हो गया है? राम राम, ऐसा सुन्दर कटोरा चूर कर दिया, कुछ सनक तो नहीं गये हो?

बलराज—हाँ सनक ही गया हूँ।

बिलासी—यह किस बात पर कटोरे को पटक दिया?

बलराज—इसलिये कि जो हम से अधिक काम करता है उसे हम से अधिक खाना चाहिये। हमने तुम से बार बार कह दिया कि रसोई में जो कुछ थोड़ा बहुत हो वह सब के सामने आना चाहिए। अच्छा खायँ तो सब खायँ, बुरा खायँ तो सब खायँ। लेकिन तुम्हें न जानें क्यों यह बात भूल जाती है। अब याद रहेगी। रङ्गी कोई बेगार का आदमी नहीं है, घर का आदमी है, वह मुँह से चाहे न कहे पर मन में अवश्य कहता होगा कि छाती फाड़कर काम मैं करूँ और मोछों पर ताव देकर खायँ यह लोग। ऐसा दूध घी खाने पर लानत है।

रङ्गी ने कहा—भैया, नित्त तो दूध खाता हूँ, एक दिन न सही। तुम हकनाहक इतने खफा हो गये।

इसके बाद तीनों आदमी चुप खाने लगे। खा पीकर बलराज और रङ्गी दोनों ऊख की रखवाली करने मंडिया की तरफ चले। वहाँ बलराज ने चरस निकाली और दोनों ने खूब दम

लगाये। जब दोनों ऊख के छिलके के बिछावन पर कम्मल ओढ़कर लेटे तो रंगी बोला, काहे भैया, आज तुम से लश्कर के चपरासियों से कुछ कहासुनी हो गयी थी क्या ?

बलराज—हाँ, हरतुज हो गयी थी। दादा ने मने न किया होता तो दोनों को मारता।

रंगी—तभी दोनों तुम्हें बुरा भला कहते चले जाते थे। मैं उधर से क्यारी में पानी खोलकर आता था। मुझे देखकर दोनों चुप हो गये। मैंने इतना सुना अगर यह लौंडा कल सड़क पर गाड़ियाँ पकड़ने में कुछ तकरार करे तो बस चोरी का इलजाम लगाकर गिरफ्तार कर लो। एक पचास बेंत पड़ जायँ तो इसकी शेखी उतर जाय।

बलराज—अच्छा, यह सब यहाँ तक मेरे पीछे पड़े हुए हैं। तुमने अच्छा किया मुझे चेता दिया। मैं कल सबेरे ही डिप्टी साहब के पास जाऊँगा।

रंगी—क्या करने जाओगे भैया, सुनते हैं अच्छा आदमी नहीं है। बड़ी कड़ी सजा देता है। किसी को छोड़ना तो जानता ही नहीं। तुम्हें क्या करना है जिसकी गाड़ियाँ पकड़ी जायँगी आप निपट लेगा।

बलराज—वाह, लोगों में इतना ही बूता होता तो किसी की गाड़ियाँ पकड़ी ही क्यों जातीं। सीधे का मुँह कुत्ते ही चाहते हैं, यह चपरासी तो आदमी ही है।

रंगी—तो तुम काहे को दूसरों के बीच में पड़ते हो। तुम्हारे दादा आज बहुत उदास थे और अम्मां रोती रहीं।

बलराज—क्या जाने क्यों रंगी, जब से दुनिया का थोड़ा

बहुत हाल जानने लगा हूँ, मुझसे अन्याय नहीं देखा जाता। जब किसी जबरे को किसी गरीब का गला दबाते देखता हूँ तो मेरे बदन में आग सी लग जाती है। यही जी चाहता है कि चाहे अपनी जान रहे या जाय, इस जबरे का सिर नीचा कर दूँ। सिर पर एक भूत सा सवार हो जाता है। जानता हूँ कि अकेला चना भाड़ नहीं फोड़ सकता पर मन काबू से बाहर हो जाता है।

इसी तरह की बातें करते दोनों सो गये। प्रातःकाल बलराज घर गया, कसरत की, दूध पिया और अपना ढीला कुर्ता पहन, पगड़ी बाँध डिप्टी साहब के पड़ाव की ओर चला। मनोहर अब तक, उससे रूठे बैठे थे। अब जप्त न कर सके। पूछा, कहाँ जाते हो ?

बलराज—जाता हूँ डिप्टी साहब के पास।

मनोहर—क्यों सिर पर भूत सवार है, अपना काम क्यों नहीं देखते ?

बलराज—देखूँगा कि पढ़े लिखे लोगों का मिजाज कैसा होता है।

मनोहर—धक्के खाओगे और कुछ नहीं।

बलराज—धक्के तो चपरासियों के खाते हैं, इसकी क्या चिन्ता। कुत्ते की जात तो पहचानी जायगी।

मनोहर ने उसकी ओर निराशापूर्ण स्नेह की दृष्टि से देखा और कंधे पर कुदाल रखकर हार की ओर चल दिया। बलराज को मालूम हो गया कि अब यह मुझे छोड़ा हुआ साँड़ समझ रहे हैं, पर वह अपनी धुन में मस्त था। मनोहर का यह विचार कि इस समय समझाने का उतना असर न होगा जितना विरक्तिभाव

का निष्फल हो गया। वह ज्यों ही घर से बाहर निकला बलराज ने भी लट्ठ कंधे पर रक्खा और कैम्प की ओर चला। किसी हाकिम के सम्मुख जाने का उसको यह पहला ही अवसर था। मन में अनेक विचार आते थे। मालूम नहीं मिलें या न मिलें, कहीं मेरी बातें सुनकर बिगड़ न जाँय, मुझे देखते ही सामने से निकलवा न दें। चपरासियों ने मेरी शिकायत अवश्य की होगी। क्रोध में भरे बैठे होंगे। बाबू ज्ञानशंकर से इनकी दोस्ती भी तो है। उन्होंने भी हम लोगों की ओर से उनके कान खूब भरे होंगे। मेरी सूरत देखते ही जल जायँगे। उंह, जो कुछ हो, एक नया अनुभव तो हो जायगा। यही पढ़े लिखे लोग तो हैं जो सभाओं में और लाट साहब के दरबार में हम लोगों की भलाई की रट लगाया करते हैं, हमारे मुखिया नेता बनते हैं। अब देखूंगा कि यह लोग अपनी बातों के कितने धनी हैं।

बलराज कैम्प में पहुँचा तो देखा कि जगह जगह लकड़ी के अलाव जल रहे हैं, कहीं पानी गर्म हो रहा है, कहीं चाय बन रही है, एक ओर बूचड़ बकरे का मांस काट रहा है। दूसरी ओर बिसेसर साह बैठे जिन्स तौल रहे हैं। चारों ओर घड़े और हाँड़ियाँ टूटी पड़ी थीं। एक वृक्ष की छाँह में कितने ही आदमी सिकुड़े बैठे थे जिनके मुकदमों की आज पेशी होनेवाली थी। बलराज पेड़ों की आड़ में होता हुआ ज्वालासिंह के खेमे के पास जा पहुँचा। उसे यह धड़का लगा हुआ था कि कहीं उन दोनों चपरासियों की निगाह मुझ पर न पड़ जाय। वह खड़ा सोचने लगा कि डिप्टी साहब के सामने कैसे जाऊँ। उस पर इस समय एक रोब छाया हुआ था। खेमे के सामने जाते हुए

पैर काँपते थे। अचानक उसे गौसखाँ और सुक्खू चौधरी एक पेड़ के नीचे आग तापते हुए दिखाई पड़े। अब वह खेमे के पीछे खड़ा न रह सका। उनके सामने धक्के खाना या डाँट सुनना मर जाने से भी बुरा था, वह जी कड़ा करके खेमे के सामने चला गया और ज्वालासिंह को सलाम करके चुपचाप खड़ा हो गया।

बाबू ज्वालासिंह एक न्यायशील और दयालु मनुष्य थे, किन्तु इस दो तीन महीनों के दौरे में उन्हें अनुभव हो गया था कि बिना कड़ाई के मैं सफलता के साथ अपने कर्त्तव्य का पालन नहीं कर सकता। सौजन्य और शालीनता निज के कामों में चाहे कितनी ही सराहनीय हो, लेकिन शासन कार्य्य में यह सद्‌गुण अवगुण बन जाते हैं। लोग उनसे अनुचित लाभ उठाने लगते हैं, उन्हें अपनी स्वार्थसिद्धि का साधन बना लेते हैं। अतएव न्याय और शील में परस्पर विरोध हो जाता है। रसद और बेगार के विषय में भी अधीनस्थ कर्मचारियों की चापलूसियाँ उनकी न्यायनीति पर विजय पा गयी थीं और वह अज्ञातभाव से स्वेच्छाचारी अधिकारियों के वर्त्तमान साँचे में ढल गये थे। उन्हें अपने विवेक पर पहले ही से गर्व था, अब इसने आत्म-श्लाघा का रूप धारण कर लिया था। वह जो कुछ कहते या करते थे उसके विरुद्ध एक शब्द भी न सुनना चाहते थे। इससे उनकी राय पर कोई असर न पड़ता था। वह निस्पृह मनुष्य थे और न्याय मार्ग से एक जौ भर भी न टलते थे, उन्हें स्वाभाविक रूप से यह विचार होता था कि किसी को मुझ से शिकायत न होनी चाहिए। अपने औचित्य पालन का विश्वास और अपनी गौरवशील प्रकृति उन्हें प्रार्थियों के प्रति अनुदार बना देती थी।

बलराज को सामने देखकर बोले, कौन है ? यहाँ क्यों खड़ा है ?

बलराज ने झुक कर सलाम किया। उसकी उद्दंडता लुप्त हो गयी थी। डरता हुआ बोला, हजूर से कुछ बोलना चाहता हूँ। ताबेदार का घर इसी लखनपूर में है।

ज्वालासिंह—क्या कहता है ?

बलराज—कुछ नहीं, इतना ही पूछना चाहता हूँ कि सरकार को आज कितनी गाड़ियों की जरूरत होगी।

ज्वाला—क्या तुम गाड़ियों के चौधरी हो ?

बलराज—जी नहीं, चपरासी लोग सड़क पर जाकर मुसाफिरों की गाड़ियाँ रोकते हैं और उन्हें दिक करते हैं। मैं चाहता हूँ कि सरकार को जितनी गाड़ियाँ दरकार हों उतनी आसपास के गाँवों से खोज लाऊँ। उनका सरकार से जो किराया मिलता हो वह दे दिया जाय तो मुसाफिरों को रोकना न पड़े।

ज्वालासिंह ने अपना सामान लादने के लिये ऊँट रख लिये थे किन्तु यह जानते थे कि मातहतों और चपरासियों को अपना असबाब लादने के लिये गाड़ियों की जरूरत होती है। उन्हें इसका खर्च सरकार से नहीं मिलता। अतएव वह लोग गाड़ियाँ न रोकें तो उनका काम ही न चले। यह व्यवहार चाहे प्रजा को कष्ट पहुँचावे पर क्षम्य है। उनके विचार में यह कोई ऐसी ज्यादती न थी। संभव था कि यही प्रस्ताव किसी सम्मानित पुरुष ने किया होता तो वह उस पर विचार करते, लेकिन एक अक्खड़, गँवार, मूर्ख देहाती को उनसे यह शिकायत करने का साहस हो, यह उन्हें न्याय का पाठ पढ़ाने का दावा करे, यह उनके आत्मा-

भिमान के लिये असह्य था। चिढ़कर बोले, जाकर सरिश्तेदार से पूछो।

बलराज—हजूर ही उन्हें बुलाकर पूछ लें, मुझे वह न बतावेंगे।

ज्वालासिंह—मुझे इस सिरदर्द की फुर्सत नहीं है।

बलराज के तीवर पर बल पड़ गये। शिक्षित समुदाय की नीति परायणता और सज्जनता पर उसकी जो श्रद्धा थी वह क्षण मात्र में भंग हो गयी। इन सद्‌भावों की जगह उसे अधिकार और स्वेच्छा का अहँकार अकड़ता हुआ दीख पड़ा। अहंकार के सामने सिर झुकाना उसने न सीखा था। उसने निश्चय किया कि जो मनुष्य इतना अभिमानी हो और मुझे इतना नीच समझे वह आदर के योग्य नहीं है। इनमें और गोसखाँ या मामूली चपरासी में अन्तर ही क्या रहा। ज्ञान और विवेक की ज्योति कहाँ गयी। निश्शंक होकर बोला—सरकार इसे सिरदर्द समझते हैं और यहाँ हम लोगों की जान पर बनी हुई है। हजूर यहाँ धर्म के आसन पर बैठे हैं और चपरासी लोग परजा को लूटते फिरते हैं। मुझे आप से यह बिनती करने का हौसला हुआ तो इसलिये कि मैं समझता था कि आप दीनों की रक्षा करेंगे। अब मालूम हो गया कि हम अभागों का सहायक परमात्मा के सिवा और कोई नहीं।

यह कहकर वह बिना सलाम किये ही वहाँ से चल दिया। उसे एक नशा सा हो गया था। बातें अवज्ञापूर्ण थीं, पर उनमें स्वाभिमान और सदिच्छा कूट कूटकर भरी हुई थी। ज्वाला-सिंह में अभी तक सहृदयता का सम्पूर्णतः पतन न हुआ था।

क्रोध की जगह उनके मन में सद्भावना का विकास हुआ। अब तक इनके यहाँ स्वार्थी और खुशामदी आदमियों ही का जमघट रहता था। ऐसे एक भी स्पष्टवादी मनुष्य से उनका सम्पर्क न हुआ था। जिस प्रकार मीठे पदार्थ खाने से ऊबकर हमारा मन कड़वी वस्तुओं की ओर लपकता है, उसी भाँति ज्वालासिंह को यह कड़वी बातें प्रिय लगीं। इन्होंने उनके हृदय-नेत्रों के सामने से पदाभिमान का परदा हटा दिया। जी में तो आया कि इस युवक को बुलाकर उससे खूब बातें करूँ, किन्तु अपनी स्थिति का विचार करके रुक गये। वह बहुत देर तक बैठे हुए इन बातों पर विचार करते रहे। अन्तिम शब्दों ने उनकी आत्मा को एक ठोंका दिया था और वह जागृत हो गयी थी। मन में अपने कर्त्तव्य का निश्चय कर लेने के बाद उन्होंने अहलमद साहेब को बुलाया। सैयद ईजाद हुसेन ने बलराज को जाते देख लिया था। कल का सारा वृत्तान्त उन्हें मालूम ही था। ताड़ गये कि यह लौंडा डिप्टी साहेब के पास फरियाद लेकर आया होगा। पहले तो शंका हुई कहीं डिप्टी साहेब इसकी बातों में न आ गये हों। लेकिन जब उसकी बातों से ज्ञात हुआ कि डिप्टी साहेब ने उल्टे और फटकार सुनायी तो धैर्य्य हुआ। बलराज को डाँटने लगे। वह अपने अफसरों के इशारे के गुलाम थे और उन्हीं के इच्छानुसार अपने कर्तव्य का निर्णय किया करते थे।

बलराज इस समय ऐसा हताश हो रहा था कि पहले थोड़ी देर तक वह चुपचाप खड़ा ईजादहुसेन की कठोर बातें सुनता रहा अंत में गंभीर भाव से बोला, आप क्या चाहते हैं कि हम लोगों पर अन्याय भी हो और हम फरियाद भी न करें?

ईजादहुसेन—फरियाद का मजा तो चख लिया। अब चालान होता है तो देखें कहाँ जाते हो। सरकारी आदमियों से मजाहिम होना कोई खालाजी का घर नहीं है। डिप्टी साहेब को तुम लोगों की सरकशी का रत्ती रत्ती हाल मालूम है। बाबू ज्ञानशङ्कर ने सारा कच्चा चिट्ठा उनसे बयान कर दिया है। वह तो मौके की तलाश में थे। आज शाम तक सारा गाँव बँधा जाता है। गौसखाँ को सीधा पा लिया है इसीसे शेर हो गये हो। अब सारी कसर निकली जाती है। इतने बेत पड़ेंगे कि धज्जियाँ उड़ जायँगी।

बलराज—ऐसा कोई अँधेर है कि हाकिम लोग बेकसूर किसी की सजा कर दें।

ईजादहुसेन—हाँ हाँ, ऐसा ही अंधेर है। सरकारी आदमियों को हमेशा बेगार मिली है और हमेशा मिलेगी। तुम गाड़ियाँ न दोगे तो वह क्या अपने सिर पर असबाब लादेंगे। हमें जिन २ चीजों की जरूरत होगी तुम्हीं से ली जायँगी। हँसकर दो या रोकर दो। समझ गये·····।

इतने में एक चपरासी ने आकर कहा, चलिये, आपको सरकार याद करते हैं। ईजादहुसेन पान खाये हुए थे। तुरत कुल्ली की, पगड़ी बाँधी और ज्वालासिंह के सामने जाकर सलाम किया।

ज्वालासिंह ने कहा, मीर साहब, चपरासियों को ताकीद कर दीजिये कि अब से कैम्प के लिए बेगार गाड़ियाँ न पकड़ा करें। आप लोग अपना सामान मेरे ऊँटों पर रख लिया कीजिये। इससे आप लोगों को चाहे थोड़ी सी तकलीफ हो लेकिन यह

मुनासिब नहीं मालूम होता कि अपना आसाइश के लिये दूसरों पर जब्र किया जाय।

ईजादहुसेन—हुजूर बहुत बजा फरमाते हैं। आज से गाड़ियाँ पकड़ने की सख्त मुमानियत कर दी जायगी। बेशक यह सरासर जुल्म है।

ज्वालासिंह—चपरासियों से कह दीजिये कि मेरे इजलास के खेमे में रात को सो रहा करें। बेगार में पुआल लेने की जरूरत नहीं। गरीब किसान यही पुआल काट काटकर जानवरों को खिलाते हैं। इसलिए उन्हें इसका देना बहुत नागवार गुजरता है।

ईजादहुसेन—हुजूर का फर्माना बजा है। हुक्काम को ऐसा ही ग़रीब परवर होना चाहिए। लोग ज़मींदारों की सख्तियों से यों ही परेशान रहते हैं, उस पर हुक्काम की बेगार तो और भी सितम हो जाती है।

ज्वालासिंह के हृदय में ज्ञानशंकर के ताने अभी तक खटक रहे थे। यदि थोड़े से कष्ट से उन पर छींटे उड़ाने की सामग्री हाथ आ जाय तो क्या पूछना। ज्वालासिंह इस द्वेष के आवेग को न रोक सके। एक बार गाँव में जाकर उसकी दशा आँखों से देखने का निश्चय किया।

८ बज चुके थे, किन्तु अभी तक चारों ओर कुहरा छाया हुआ था। लखनपुर के किसान आज छुट्टी सी मना रहे थे। जगह जगह अलाव के पास बैठे हुए लोग कल की घटना की आलोचना कर रहे थे। बलराज की धृष्टता पर भी टिप्पणियाँ हो रही थीं। इतने में ज्वालासिंह चपरासियों और कर्मचारियों के साथ गाँव में आ पहुँचे। गौसखाँ और उनके दोनों चपरासी भी पीछे

पीछे चले आते थे। उन्हें देखते ही स्त्रियाँ अपने अधमँजे बर्तन छोड़ छोड़कर घरों में घुसीं। बालक वृद्ध भी इधर उधर दुबक गये। कोई द्वार पर का कूड़ा उठाने लगा, कोई रास्ते में पड़ी हुई खाक उठाने लगा। ज्वालासिंह गाँव का भ्रमण करते हुए सुक्खू चौधरी के कोल्हुआड़े में आकर खड़े हो गये। सूक्खू चारपाई लेने दौड़े। गौसखाँ ने एक आदमी को कुरसी लाने के लिये चौपाल दौड़ाया। लोगों ने चारों ओर से आ आकर ज्वालासिंह को घेर लिया। अमंगल के भय से सब के चेहरे पर हवाइयाँ उड़ रही थीं।

ज्वालासिंह—तुम्हारी खेती इस साल कैसी है?

सुक्खू चौधरी को नेतृत्व का पद प्राप्त था। ऐसे अवसरों पर वही अग्रसर हुआ करते थे। पर वह अभी तक घर में से चारपाई निकाल रहे थे जो बृहदाकार होने के कारण द्वारों से निकल न सकती थी। इसलिये कादिर खाँ को प्रतिनिधि का आसन ग्रहण करना पड़ा। उन्होंने विनीत भाव से उत्तर दिया, हजूर अभी तक अच्छी है, आगे अल्लाह मालिक है।

ज्वालासिंह—यहाँ मुझे आबपानी के कूएँ बहुत कम नजर आते हैं, क्या जमींदार के तरफ से इसका कोई इन्तजाम नहीं है?

कादिर—हमारे जमींदार तो हजूर हम लोगों की बड़ी परवस्ती करते हैं, अल्लाह उन्हें सलामत रक्खे, हम लोग आप ही आलस के मारे कोई फिकर नहीं करते।

ज्वालासिंह—मुंशी गौसखाँ तुम लोगों की सरकशी की बहुत शिकायत करते हैं। बाबू ज्ञानशंकर भी तुम लोगों से खुश नहीं हैं। यह क्या बात है। तुम लोग वक्त पर लगान नहीं देते और जब तक़ाज़ा किया जाता है तो फ़िसाद पर अमादा हो जाते हो।

जिस प्रकार न्यायी राजा के शांति-पूर्ण राज्य में प्रजा आनंद-पूर्वक क्रीड़ा-कौतुक और आमोद-प्रमोद के साथ मनोविनोद किया करती है, उसी प्रकार जलाशयों के दर्पण-समान निर्मल जल में मछलियाँ आनंद-पूर्वक अठखेलियाँ कर रही हैं। नदियों के तीरों पर कुश, काश आदि के शारदीय पुष्प चारों ओर देख पड़ते हैं। मानो वर्षा-वृद्धा के सकल केश श्वेत हो रहे हैं। खेतों की क्यारियों में स्वल्प निर्मल जल दर्पण के समान स्वच्छ हो रहा है। उसमें पके और झुके हुए धानों की पीली परछाहीं पड़ रही है। मानों वे धान अपनी शोभा देखने के लिये सिर झुकाए खड़े हैं।

इस ऋतु में कहीं ऐसा जल नहीं है, जिसमें कमल न खिले हों, कोई ऐसा कमल नहीं है, जिस पर भौंरा न बैठा हो; कोई ऐसा भौंरा नहीं है, जो मधुर गुंजार न करता हो और कोई ऐसा मधुर गुंजार भी नहीं है, जो श्रोताओं के मन को न हरता हो। शरद् के आगमन से सभी नदियाँ विरहिणी कामिनी के समान प्रतिदिन क्षीण होती चली जा रही हैं। उनमें शारदीय वायु के कोमल संचार से तरल तरंगें उठतीं और क्रमशः नष्ट होती जा रही हैं; जैसे दरिद्रों के हृदय में अनेक मनोरथ उत्पन्न होते और अपूर्ण ही नष्ट हो जाते हैं।

आकाश वैसे ही निर्मल हो गया है, जैसे वासना-रहित ज्ञानियों का निर्विकार चित्त। दिन में सूर्य की किरणें तीखी होने लगी हैं। उनके उष्ण स्पर्श से वृक्षों और लताओं के नवीन सुकुमार पल्लव वैसे ही मुरझा जाते हैं, जैसे व्यर्थ क्रोध करने वाले अहंकारियों के कटु वचन सुनकर सज्जनों के चित्त दुःखी हो जाते

हैं। आकाश मेघ-शून्य हो रहा है; किंतु कभी-कभी निर्जल मेघों के श्वेत खंड इधर-उधर बिखरे हुए देख पड़ते हैं। मानो आकाश अगणित, स्वच्छ, धवल चामर लेकर प्रकृति-देवी के मनोहर मस्तक पर ढार रहा है।

रात्रि में आकाश की सुषमा अनिर्वचनीय हो रही है। अगणित तारा-गण हीरे की कनियों के समान अपना विमल प्रकाश भूमंडल-तल तक प्रसारित कर रहे हैं। मानो ज़री के बेल-बूटों से खचित श्वेत रेशमी झूल आकाश-रूपी कृष्ण गज की पीठ पर झूल रही है। अथवा यों कहिये कि शरद् ने प्रकृति-देवी के सिंहासन के ऊपर मोतियों की झालरों से झिलमिलाता हुआ श्वेत चँदोवा तान दिया है। चंद्र-मंडल निर्मल, उज्ज्वल, देदीप्यमान, शीतल, आह्लाद-दायक तथा पूर्ण होकर परम सुंदरी नायिका के सुंदर हास्य से युक्त मुख-मण्डल के समान अत्यंत सुहावना तथा मनोहर जान पड़ता है। आज ही का चंद्र कवियों की उपमाओं का आधार-स्तंभ है। आज ही के चंद्र को देखकर रसिक जन अपनी परम सुंदरी प्राणवल्लभा के विशद मुख-मंडल को स्मरण करते हैं। यही चंद्र संयोगियों को चंदन-पंक के समान शीतल और सुखद तथा वियोगियों को देदीप्यमान प्रज्वलित अग्नि पिंड के सदृश तप्त प्रतीत होता है। जब शरत्काल की चारु चंद्रिका चारों ओर बिखर जाती है, तब संसार आलोकमय जान पड़ता है। मानो सारा संसार ही मंदाकिनी के परम पावन धवल जल में स्नान कर निर्मल तथा निष्पाप हो गया है। अथवा यों कहिये कि प्रकृति-दासी ने शारदीय उत्सव में देवी के नृत्य के लिये चारों ओर श्वेत चाँदनी बिछा रक्खी है। जैसे सच्चे कवि की कविता

अथवा न्यायी राजा की कीर्ति स्वच्छ तथा निष्कलंक होती है, वैसे ही यह चंद्रिका भी निष्कलंक तथा स्वच्छ है।

इसी सुहावनी चाँदनी में नटनागर, सब गुनआगर, वृंदावन-विहारी, भक्त-सुखकारि, मुरारि माधव ने महारास रचा था। उसी रास में गोपियों के बहु-काल-तप्त हृदय की तरल तृषा को अनुकंपामृत से शांत किया था। आज भी जब शरद्-ऋतु आती है, तभी उस रास-मंडल का दृश्य भक्तों और रसिकों की आँखों के सामने नाचने लगता है। जिस समय श्रीयशोदा-नंदन, भक्त-हृदय-चंदन, नंद-नंदन ने गोपियों के बीच, राधिका के साथ, महारास में नृत्य किया था, उस समय चंद्रमा ने भी अपनी स्वच्छ चंद्रिका फैलाकर अपने को कृतार्थ माना था। इन्हीं सब शोभाओं को यादकर पद्माकर ने लिखा है—

"तालन पै, ताल पै, तमालन पै, मालन पै,
        वृंदावन-बीथिन, बिहार-बंसी—बट पै ;
कहै पदमाकर अखंड रास-मंडल पै,
        मंडित उमंडि महाकालिंदी के तट पै।
छिति पर, छान पर, छज्जन छतान पर,
        ललित लतान पर, लाड़िलों की लट पै ;
आई भले छाई यह सरद-जुन्हाई, जिहि,
        पाई छबि आजु ही कन्हाई के मुकुट पै।"

"खनक चुरीन की, त्यों ठनक मृदंगन की,
        रुनुक-झुनुक सुर नूपुर के जाल को ;
कहै पदमाकर त्यों बाँसुरी की धुनि मिलि,
        रह्यो बँधि सरस सनाको एक ताल को।

देखत बनत, पै न कहत बनै कछू,
विविध बिलास सों हुलास यह ख्याल को ;
चंद छबि-रास, चाँदनी को परगास,
राधिका को मंद हास, रास-मंडल गोपाल को।"

एक और कवि कहता है—

"जमुना के पुलिन, उजेरी निसि सरद की,
राका को छपाकर किरिन नभ चाल की;
नंद को लडैतो तहाँ गोपिका-समूह लैके,
रची रास-क्रीड़ा, बजै बीना सुर-ताल की।

लहाछेह गतिन की कही ना परत मों पै,
द्वै-द्वै गोपिका के मध्य छबि नंदलाल की ;
सोभा अभिराम अवलोकि कै "अभिन्न" कहै,
एक बार बोलो जै-जै मदन-गोपाल की।"

इसी तरह प्रायः सभी कवियों ने शरद्-ऋतु का वर्णन किया है।

इस शरद्-ऋतु में स्वच्छता के कारण सारा संसार ही स्वच्छ होना चाहता है। स्वच्छता ही के कारण हंस चंद्रमा के समान, कामिनी गति के कारण हंस के समान और आकाश निर्मलता के कारण जल के समान आनंद-प्रद जान पड़ता है।

गरमी निकल गई। सरदी आ गई। अब पसीने से शरीर तर नहीं होता। अब पंखे की हवा नहीं रुचती। पर अभी सूक्ष्म वस्त्रों का धारण सुखकर जान पड़ता है। नर-नारी श्वेत

वस्त्र धारण कर इधर-उधर आनंद-पूर्वक विचरण करते हैं। यह समय अत्यंत सुखदायक है, इसीलिये इस समय परदेसी परदेस जाने की सामग्रियाँ इकट्ठी करने लगते हैं। पूर्व समय में राजा लोग इसी ऋतु में विजय-यात्रा किया करते थे। महाराज श्री रामचन्द्र ने भी इसी शरद् में—विजया दशमी के दिन—विजय यात्रा की थी।

सचमुच यह ऋतु बड़ी सुखदायिनी है। इस ऋतु में, हमारे यहाँ अनेक महोत्सव होते हैं। आश्विन तथा कार्तिक, इन्हीं दोनों महीनों की गिनती शरद्-ऋतु में है। प्राचीन पितरों का स्मरण, दुर्गा-पूजा, विजया-दशमी, शरत्पूर्णिमा, धन्वंतरि जन्म, लक्ष्मी-पूजा, दीप-मालिका, अन्नकूट, भ्रातृद्वितीया, देवोत्थान आदि अनेक पर्व शरत्काल की महिमा के प्रत्यक्ष उदाहरण हैं। जगदीश्वर भी इसी की शोभा देखने के लिये अपनी योगनिद्रा त्याग करते हैं। देखें, भारतवासी कब निद्रा छोड़कर उठते हैं।

कृषकों के लिये यह बड़े ही आनन्द का अवसर है। वे धानों के अन्न-पूर्ण गुच्छों को देख फूले अंग नहीं समाते। उनका सारा परिश्रम आज सफल हो गया है। कहीं धान पक गए हैं, कहीं कट रहे हैं, कहीं उसाए जाते हैं और कहीं राशि बनाकर रक्खे जा रहे हैं।

जब सारा संसार प्रसन्न है, तो मैं भी प्रसन्न होकर ईश्वर से प्रार्थना करता हूँ कि भारतवासियों का सारा परिश्रम सफल हो, उनके सब मनोरथ पूर्ण हों और गोलोक-वासी भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की यह भाव-भरी कविता सत्य हो—

"खल-गनन सों सज्जन दुखी मति होइँ, हरि-पद-रति रहै;
उपधर्म छूटैं, सत्व निज भारत गहै, कर-दुख बहै।
बुध तजहिं मत्सर, नारि, नर सम होहिं, सब जग सुख लहैं;
तजि ग्राम-कविता, सुकवि जन की अमृत-बानी सब कहैं।"

तथास्तु।

अक्षयवट मिश्र (विप्रचंद)

आठवाँ गुच्छ

आपत्तियों का पर्वत

एक स्वप्न

जगत् प्रसिद्ध तत्वज्ञानी महात्मा सोक्रेटीज़ का मत था कि यदि संसार के मनुष्यमात्र की आपत्तियाँ एक ठौर एकत्र की जायँ और फिर सब को बराबर बराबर हिस्सा बाँट दिया जाय तो इस प्रबंध से भी उन मनुष्यों को संतोष नहीं हो सकता जो पहले अपने को अत्यंत अभागा वा विपद्ग्रस्त समझते थे, क्योंकि वे शीघ्र ही यह विचारने लगेंगे कि मेरी पूर्व दशा ही अच्छी थी। इसका कारण यह है कि जो दशा अच्छी वा बुरी विधना की ओर से हमें मिली है वह या तो (१) हमारी सहन शक्ति के योग्य होती है या (२) उसमें रहने से हम उसके सहन करने में अभ्यस्त हो जाते हैं और इस कारण दोनों अवस्थाओं में से कोई भी हमें नहीं खलती। महाकवि होरेस भी इस विषय में सोक्रेटीज़ से सहमत थे। इन्होंने यहाँ तक लिखा है कि जिन कठिनाइयों वा यातनाओं में हम पिसते रहते हैं वे उन आपत्तियों की अपेक्षा बहुत ही न्यून हैं जो हमको अपनी दशा दूसरे से परिवर्तन करने में मिल सकती हैं।

मैं अपनी आराम कुरसी पर बैठा उक्त दो कथनों पर विचार कर रहा था और अपनी मानसिक तरंगों में निमग्न था कि मुझे कहीं झपकी सी आ गई और मैं तुरंत खर्राटे लेने लग गया। सोया सोया देखता क्या हूँ कि मैं एक रमणीक मैदान में जा पहुँचा हूँ जिसके चारों ओर ऊँचे ऊँचे पर्वत श्रेणी-बद्ध खड़े हैं। इन पर्वतों ने हरी वनस्पतियों से अपने प्रत्येक अंग को ऐसा ढक रखा है कि क्या मजाल जो कहीं भी खुला दिखाई दे जाय। इनके ढाल पर छोटे छोटे वृक्षों के बीच में कहीं-कहीं कोई बड़ा वृक्ष देखने में बहुत भला लगता था। यद्यपि प्रकृति-रूपी माली इस मैदान में एक भी बड़ा वृक्ष रहने नहीं दिया है, पर मैदान की हरी हरी घास वायु के हिलोरों में लहलहाती हुई कैसी प्यारी लग रही है! मैं इन्हीं मानसिक भावों की तरंगों में अपने आपको भूल प्रकृति की अनुपम शोभा देख रहा था कि सहसा मुझे कुछ शब्द सुनाई पड़े। ध्यान देकर सुनने से जान पड़ा कि जैसे कहीं ढिंढोरा पिटता हो। पास के एक मनुष्य से पूछने पर मालूम हुआ कि भगवान् चतुरानन ने आज्ञा दी है कि मनुष्य मात्र आकर अपनी अपनी आपत्तियाँ इस स्थान में फेंक जायँ। इस कार्य के लिये यह मैदान नियत किया गया है। यह सुन मैं भी एक कोने में खड़ा हो इस कौतुकमय लीला को देखने के लिये प्रस्तुत हो गया। यह देखकर मुझे एक प्रकार की प्रसन्नता होती थी कि सारे मनुष्य क्रमशः आ आकर अपनी अपनी विपत्ति की गठरी मैदान में फेंक रहे हैं। यह ढेर थोड़ी ही देर में इतना बड़ा हो गया कि आकाश को छूता दिखाई पड़ने लगा।

इस भीड़भाड़ में एक दुबली पतली चंचला स्त्री बड़ा उत्साह

दिखा रही थी। ढीला ढाला वस्त्र पहने हाथ में म्यागनोफाइंग ग्लास लिये वह इधर उधर घूमती दिखाई दे रही थी। उसके वस्त्र में भूत प्रेत के मनःकल्पित चित्र बेल बूटों में कढ़े थे।

जब उसका वस्त्र वायु में इधर-उधर उड़ता तो बहुत सी विचित्र ढंग की हास्यजनक एवं भयानक कल्पित मूर्त्तियाँ उसमें दिखाई पड़तीं। इनकी चेष्टा से उन्माद तथा विह्वलता के कुछ चिह्न झलक रहे थे। लोग इसे भावना कहकर पुकारते थे। मैंने देखा कि यह चंचला प्रत्येक मनुष्य को अपने साथ ढेर के पास ले जाती, बड़ी उदारता से उनकी गठरी कंधे पर उठवा देती और अंत में उसके फेंकने में भी पूरी सहायता देती है। मेरा हृदय यह दृश्य देख कि, सभी मनुष्य अपने विपद्‌भार के नीचे दब रहे हैं, भर आया। आपत्तियों का यह पर्वत देख के मेरा चित्त और भी चलायमान हो रहा था।

इस स्त्री के अतिरिक्त और कई एक मनुष्य इस भीड़ में मुझे विचित्र दिखाई पड़े। एक को देखा कि वह चिथड़ों की एक गठरी अपने लबादे के भीतर बड़ी सावधानी से छिपाये हुए आया है। जब उसे फेंकने लगा तब मैंने देखा कि अपने दारिद्र्य को फेंक रहा है। एक दूसरे को देखा कि बड़े पश्चात्ताप के साथ अपनी गठरी फेंक कर चलता हुआ। मैंने उसके जाने पर उसकी गठरी खोलकर देखी तो मालूम हुआ कि दुष्ट अपनी अर्धांगिनी को फेंक गया है जिससे उसको सुख की अपेक्षा अति दुःख प्राप्त होता था। इसके अनंतर दिखाई दिया कि बहुतेरे प्रेमीजन अपनी अपनी गुप्त गठरी लिये आ रहे हैं।

पर सब से आश्चर्यजनक बात यह थी कि यद्यपि ये लोग

अपनी अपनी गठरियाँ फेंकने के हेतु लाए थे और उनके दीर्घ निश्वास से जान पड़ता था कि उनका हृदय इस बोझ के नीचे दबकर चूर चूर हुआ जाता है, पर उस ढेर के निकट पहुँचने पर उनसे फेंकते नहीं बनता।

ये लोग कुछ काल तक खड़े न जाने क्या सोचते रहे। उनकी चेष्टा से अब ऐसा जान पड़ने लगा कि उनके चित्त में मानो बड़ा संकल्प विकल्प हो रहा है। फिर शीघ्र ही उनका मुख प्रफुल्ल दिखाई पड़ने लगा और वे अपनी अपनी गठरी ज्यों की त्यों लिये वहाँ से चलते दिखाई दिए। मैं समझ गया। इन लोगों ने तर्क वितर्क के पश्चात् यही निश्चय किया कि अपनी अपनी बला अपने पास ही रखना भलमनसाहत है। इसी से ये सब अपनी गठरियाँ अपने घर लिये जा रहे हैं। मैंने देखा कि बहुत सी मनचली बूढ़ी स्त्रियाँ जिनके मन की अभी सुखसंभोग से तृप्ति नहीं हुई थी और जो चाहती थीं कि मैं सदा नवयौवना ही बनी रहूँ, अपनी झुर्रियाँ फेंकने के लिये आ रही हैं। बहुतेरी अल्पवयस्का छोकड़ियाँ अपना काला वर्ण फेंक रही हैं और यह चाहती हैं कि मेरा रंग गोरा हो जाय। किसी ने अपनी बड़ी नाक, किसी ने नाटा कद और किसी ने अपनी बड़ी पेटी फेंक दी है और यह प्रार्थी हुई हैं कि मेरी तोंद की परिधि कुछ कम हो जाय या यदि रहे भी तो कुछ ऊँचाई अधिक मिल जाय। किसी ने अपना कुबड़ापन प्रसन्नतापूर्वक ढेर में फेंक दिया है। इसके पश्चात् रोगियों का दल आया जिसने अपना अपना रोग अलग कर दिया। पर मुझे सब से आश्चर्यजनक यह जान पड़ा कि मैंने इन सब मनुष्यों में किसी को भी अब तक ऐसा नहीं देखा

जो अपने दोषों वा अपनी मूर्खता से अलग होने आया हो। मैंने पहले सोचा था कि मनुष्य मात्र इस समय अवसर पा अपना अपना मनोविकार फेंक जायँगे।

अब मैंने देखा कि कोई कोई मनुष्य पत्र के बंडल बगल में दबाये बड़ी व्यग्रता से फेंकने को दौड़े आ रहे हैं। क्यों भाई यह पत्रों का बंडल कैसा ? मालूम हुआ कि यह दफा १२४ ए. है, जिसने इन महाशयों को चिंताकुल कर रखा है, एवं इनके व्यापार में बाधा डाल रखी है। इसके अनंतर एक मूर्ख को देखा कि वह अपने अपराधों को बंडल में बाँधकर फेंकने ले आया है, किंतु अपराधों को फेंकने के बदले अपनी चेतना-शक्ति को फेंके देता है। एक दूसरे महापुरुष अविद्या के स्थान में नम्रता को पटक कर भागे जाते हैं।

जब इस प्रकार मनुष्य मात्र अपने अवगुणों की गठरियाँ फेंक चुके, तब वह चंचला युवती फिर दिखाई पड़ी, पर इस बार वह मेरी ओर आ रही है। यह देख मेरे जी में अनेक प्रकार के विचार उठने लगे। पर उसकी मदमाती चाल कुछ ऐसी भली मालूम हुई कि मैं एकटक उसी ओर देखता रहा। उसके अंग अंग में ऐसी चंचलता भरी थी कि चलने में एक एक अंग फड़कता था। मैं यह देख ही रहा था कि वह आ पहुँची और जैसे कोई किसी को दर्पण दिखावे, उसने अपने बृहद्दर्शक यंत्र को मेरे सम्मुख किया। मैं अपने चेहरे को उसमें देखकर चौंक पड़ा। उसकी अपरिमित चौड़ाई पर मुझे बड़ी ग्लानि हुई और उसको उपमुख के समान उतार कर मैंने भी फेंक दिया। संयोग से जो मनुष्य मेरी बगल में खड़ा था उसने अभी कुछ देर पहले अपने

बेढब लंबे चेहरे को अलग कर दिया था। मैंने सोचा कि मुझे अपने लिये दूसरा चेहरा कहीं दूर खोजने नहीं जाना पड़ेगा और उसने भी यही सोचा कि उसे भी पास ही अपने योग्य सुडौल चेहरा मिल जायगा। मनुष्य मात्र अपनी आपत्तियाँ फेंक चुके थे। इस कारण अब उन सबको अधिकार था कि अपने लिये जो चाहें ढेर में से ले सकते हैं।

वास्तव में मुझे यह देख बड़ी प्रसन्नता होती थी कि संसार के सब मनुष्यों ने अपनी अपनी विपद् फेंक दी हैं। उनकी आकृति से संतुष्टता का लक्ष्य हो रहा था। अपने कार्य से छुट्टी पा सभी इधर उधर टहल रहे थे। पर अब मुझे यह देख आश्चर्य हो रहा था कि बहुतों ने जिसे आपत्ति समझ कर अलग कर दिया था उसी के लिये बहुतेरे मनुष्य टूट रहे थे, एवं मन ही मन यह कहते थे कि ऐसे स्वर्गीय पदार्थ को जिसने फेंक दिया है वह अवश्य कोई मूर्ख होगा। अब भावना देवी फिर चंचल हुई और इधर-उधर दौड़ धूप करने लगीं। सबको फिर बहकाने लगीं कि तू अमुक पदार्थ ले, अमुक वस्तु न ले।

इस समय सारी भीड़ में जो कोलाहल मच रहा था उसका वर्णन नहीं हो सकता। मनुष्य मात्र में एक प्रकार की खलबली फैल रही थी। क्या बालक, क्या वृद्ध, सभी अपने अपने मनोवांछित पदार्थ के ढूँढ निकालने में दत्त-चित्त हो रहे थे।

मैंने एक वृद्ध को जिसे अपने एक उत्तराधिकारी की बड़ी चाह थी, देखा कि एक बालक को उठा रहा है। इस बालक को उसका पिता उससे दुखी होकर फेंक गया था। मैंने देखा कि इस दुष्ट पुत्र ने कुछ देर बाद उस वृद्ध का नाकों में दम कर

दिया, वह विचारा अंत में फिर यही विचारने लगा कि मेरा पूर्व क्रोध ही मुझे मिल जाय। संयोग से इस बालक के पिता से उसकी भेंट हो गई। इस वृद्ध ने उससे सविनय कहा कि महाशय! आप अपना पुत्र ले लीजिये और मेरा क्रोध मुझे लौटा दीजिए। पर अब ऐसा करने में वह समर्थ न था। एक जहाजी नौकर ने अपनी बेड़ी फेंक दी थी और बदले में वात रोग की गठरी उठा ली। पर इससे उसका स्वरूप ऐसा विचित्र हो गया था कि देखते नहीं बनता था। इसी प्रकार सभी ने कुछ न कुछ हेरा फेरी की। किसी ने अपने दारिद्र्य के पलटे में कोई रोग पसंद किया, किसी ने क्षुधा देकर अजीर्ण उठा लिया। बहुतेरों ने अपनी पीड़ा के बदले कोई चिंता ले ली। पर सब से अधिक स्त्रियाँ ही इस हेरा फेरी में दिखाई देती थीं। इन्हें अपने नाक कान वा चेहरे मोहरे के चुनने में बड़ी कठिनाई मालूम पड़ती थी। कोई अपने मुख पर के तिल से लंबे लंबे केश बदल रही हैं, किसी ने पतली कमर के बदले चौड़ा सीना लेने की इच्छा प्रगट की है। किसी ने अपनी कुरूपता देकर वेश्यावृत्ति ग्रहण करना ही सस्ता समझ लिया है। जो कुछ हो, पर ये अबलाएँ अबला होने के कारण वा अपनी तीक्ष्णता के कारण अपनी नवीन दशा को शीघ्र ही समझ जायँगी एवं अपनी पूर्व दशा को प्राप्त होने और नवीन के त्यागने में सब से पहले तत्पर हो जायँगी।

मुझे सब से अधिक दया उस कुबड़े पर आती है जिसने अपना कुबड़ापन बदल कर पैर का लँगड़ापन पसंद किया था।

अब मैं अपना वृत्तांत सुनाता हूँ। मैं पहले कह चुका हू

कि मेरे बगलवाले मनुष्य ने मेरा छोटा मुख अपने लिये चुन रखा था। उसने अवसर पाते ही मेरा चेहरा उठा लिया और प्रसन्नतापूर्वक अपने चेहरे पर लगा लिया। मेरा गोल चेहरा लगाते ही वह ऐसा कुरूप तथा हास्यजनक दिखाई पड़ने लगा कि मैं हँसी न रोक सका। वह भी मेरी हँसी ताड़ गया और अपने किये पर अपने मन में पतछाने लगा। अब मेरे मन में भी यह विचार उठा कि कहीं मैं भी वैसा ही बेढंगा न दिखाई पड़ता होऊ। नवीन चेहरा पाकर मैंने अपना माथा खुरचने के लिये हाथ बढ़ाया तो माथे का स्थान भूल गया। हाथ होठों तक पहुँच कर रुक गया। नाक के स्थान का भी ठीक ठीक अनुभव न था। इसी से उँगलियों की कई बार ऐसी ठोकर लगी कि नेत्रों में जल भर आया। मेरे पास ही दो मनुष्य ऐसी बेढब सूरतवाले खड़े थे जिन्हें देख देख मैं मन ही मन हँस रहा था।

वह सारा ढेर इस प्रकार मनुष्यों ने आपस में बाँट लिया, पर वास्तविक संतुष्टता को वे तिस पर भी न प्राप्त हुए। जो बुद्धिमान् थे उन्हें अपनी मूर्खता का बोध पहले होने लगा। सारे मैदान में पहले से अधिक विलाप और भनभनाहट का शब्द सुनाई देने लगा। जिधर दृष्टि पड़ती थी उसी ओर लोग बिलख रहे थे और ब्रह्मा की दुहाई दे रहे थे। जब ब्रह्मा ने देखा कि अब बड़ा हाहाकार मच गया है और यदि शीघ्र इनका उद्धार न किया गया तो और भी हाहाकार मच जायगा, तब उन्होंने फिर आज्ञा दी कि मनुष्य मात्र फिर अपनी अपनी आपत्तियाँ फेंक दें, उनको उनकी पुरानी आपत्ति दी जायगी। यह आज्ञा सुन सब के जी में जी आया। सभी लोग जो उपस्थित थे मुग्ध

हां नए, एवं जयध्वनि करने लगे। सब से पुनः अपनी अपनी गठरी फेंक दी। इस बार एक विशेषता देखने में आई। वह यह थी कि ब्रह्मा ने उस चंचला स्त्री को आज्ञा दी कि वह तत्क्षण वहाँ से चली जाय। भावना देवी यह आज्ञा पाते ही वहाँ से चल दी। उसका वहाँ से जाना था कि एक दूसरी स्त्री आती दिखाई पड़ी। पर इसकी उसकी आकृति में इतना अधिक भेद था कि दोनों की तुलना करना कठिन है। पर हाँ, दो चार मोटी मोटी बातों पर विवेचना करके उनका अंतर दिखा देना हम आवश्यक समझते हैं। पहली स्त्री के चंचल नेत्र तथा चाल ढाल ऐसी मनमोहिनी थी कि एक अनजान भोले भाले चित्त को मुट्ठी में कर लेना कोई बड़ी बात न थी, पर इस नई स्त्री की आकृति कुछ और ही कह रही थी। इसके देखते ही चित्त में भय तथा सम्मान का संचार उत्पन्न हो आता था और चित्त यही चाहता था कि घंटों इसे खड़े देखा करें। जिस प्रकार विधना ने उसके अंग में चंचलता कूट कूटकर भर दी थी, उसी प्रकार इसके प्रत्येक अंग से शांति तथा गंभीरता बरस रही थी। यदि उसे आप शिशुवत् चंचला कहिये तो इसे आपको अवश्य ही शांति देवी की मूर्ति कहना पड़ेगा। इसके चेहरे से यद्यपि गंभीरता के भाव का लक्ष्य होता था, पर साथ ही एक मंद मुसकान दिखाई देती थी जिसका चित्त पर बड़ा दृढ़ प्रभाव पड़ता था। ज्योंही यह देवी मैदान में पहुँची, समस्त नेत्र उसकी ओर आकर्षित हो गए। वह धीरे धीरे आपत्तियों के पर्वत पर चढ़ गई। उसका उस ढेर पर चढ़ना था कि वह ढेर पहले की अपेक्षा तिगुना कम दिखाई देने लगा। न जाने इसमें क्या भेद था कि जितनी आपत्तियाँ

थीं, सभी कठोरता-रहित और कोमल दिखाई पढ़ने लगीं। मैं अति व्यग्र हो इस देवी का नाम पूछने लगा। इस पर एक दयावान् ने झिड़क कर उत्तर दिया, रे मूर्ख! तू क्या इनसे परिचित नहीं है? इन्हीं का नाम धीरता देवी है। अब ये देवी प्रत्येक मनुष्य को उसका पूर्व भाग बाँटने लगीं और साथ ही साथ सब को समझाती जाती थीं कि इस संसार में किस प्रकार अपनी अपनी आपत्तियों को धैर्यपूर्वक सहन करना उचित है। जो मनुष्य उनकी वक्तृता सुनता, वह संतुष्ट हो वहाँ से जाता दिखाई देता था। मैं इस रूपक के देखने में ऐसा निमग्न था कि सारी मनुष्य जाति अपना अपना भाग ले अपने अपने निवास-स्थान को सिधारी पर मैं वहीं ज्यों का त्यों खड़ा सब लीला देखता रहा, यहाँ तक कि जब उस स्त्री के पास जाने और अपना विपत्ति-भाग लेने की मेरी बारी आई तब भी मैं अपने स्थान से नहीं टसका। इस पर एक आदमी मेरी ओर आता दिखाई पड़ा। मेरे पास आते ही पहले तो वह मुझ से कहने लगा कि "तुम वहाँ क्यों नहीं जाते?" इस पर मैं कुछ उत्तर दिया ही चाहता था कि ऊँ ऊँ ऊँ करके उठ बैठा और नींद खुल गई। नींद खुलते ही नेत्र फाड़ फाड़कर इधर-उधर देखने लगा। न तो कहीं वह रमणीक स्थान था, न कहीं वह स्त्री थी, केवल मैं अपनी शय्या पर पड़ा था। मैं इस विचित्र स्वप्न पर विचार करने लगा। अंत में मैंने यही सारांश निकाला कि वस्तुतः इस संसार में मनुष्य के लिये धैर्य्यपूर्वक अपनी आपत्तियों का सहन करना, कभी किसी अन्य पुरुष की दशा को ईर्षा की दृष्टि से न देखना ही सुख का मूल है।

बाबू केशवप्रसाद सिंह

नवाँ गुच्छ

कालिदास के समय का भारत।

श्रीयुत बाबू अरविन्द घोष का परिचय कराने की आवश्यकता नहीं। बहुत छोटी उम्र में वह विलायत गये थे। वहीं, केम्ब्रिज के विश्वविद्यालय में उन्होंने शिक्षा प्राप्त की। अंग्रेज़ी के वे बड़े भारी विद्वान् हो गये। हिन्दुस्तान को लौट आने पर उन्होंने संस्कृत-साहित्य का भी अध्ययन किया और उसके गुणों पर मुग्ध होकर उसके पक्के पक्षपाती हो गये। कई साल हुये, उन्होंने मद्रास के इंडियन-रिव्यू नामक अंग्रेज़ी भाषा के मासिक पत्र में कालिदास के विषय में एक लेख प्रकाशित किया था। उस लेख से अरविन्द बाबू की असाधारण विद्वत्ता और सूक्ष्म विचार-शक्ति का पता लगता है। वाल्मीकि, व्यास और कालिदास के काव्यों का उन्होंने जो भाव समझा है वह शायद ही और किसी के ध्यान में आया होगा। उसी लेख का मतलब, नीचे प्रकाशित किया जाता है।

वाल्मीकि, व्यास और कालिदास के ग्रन्थों में प्राचीन भारत का इतिहास विद्यमान है। ये तीनों महात्मा आत्मा की भिन्न भिन्न तीन अवस्थाओं किवा शक्तियों के उदाहरण हैं। ये शक्तियाँ नैतिक मानसिक और पञ्चभौतिक हैं। इनके काव्यों में इन तीन प्रधान

शक्तियों का पूर्ण विकास पाया जाता है। इन तीनों कवियों में असाधारण कवित्व-शक्ति थी। इनमें अपने समय के मनुष्यों की भिन्न २ अवस्थाओं की छोटी बड़ी सभी घटनायें वर्णन करने की विलक्षण शक्ति थी। पश्चिमी दुनियाँ के प्रसिद्ध कवि होमर, शेक्सपियर तथा दान्ते से इन तीनों की यथाक्रम तुलना की जा सकती है। इन तीनों कवियों के काव्यों में आर्य-जाति की सभ्यता-सम्बन्धिनी तीन अवस्थाओं के बहुत ही सुन्दर चित्र देखने में आते हैं। वाल्मीकि के काव्य में आर्यों की नैतिक अवस्था के चित्र हैं; व्यास के काव्यों में मानसिक अवस्था के; कालिदास के काव्यों में पाञ्चभौतिक अवस्था के।

रामायण में एक आदर्श-समाज का चित्र है। इससे बहुत लोग अनुमान करते हैं कि उसकी कथा बनावटी है। परन्तु यह अनुमान युक्ति-सङ्गत नहीं। आदर्श-रूप में जन-समाज का परिणत होना रामायण से साबित होता है। किसी कवि में यह सामर्थ्य नहीं देखा गया कि वह इतनी बारीकी और योग्यता से केवल अनुमान द्वारा इतना बड़ा और इतना अच्छा चित्र बना सका हो। ऐसा करने की चेष्टा करने वाला अवश्य ही कोई न कोई भयानक भूल कर बैठेगा। खैर, घटना-क्रम से मालूम होता है कि वाल्मीकि-रामायण की रचना व्यास के महाभारत से पहले की है और वे कृष्ण तथा महाभारत में वर्णन किये गये अन्य लोगों के बहुत पहले विद्यमान थे। किन्तु काव्य की रचना और उसमें उल्लिखित कई विषयों पर विचार करने से प्रतीत होता है कि वाल्मीकि की रचना के समय भी देश की राजनैतिक और सामाजिक अवस्था वैसी ही थी जैसी व्यास के समय में थी।

मतलब यह कि वाल्मीकि का प्रादुर्भाव उस समय हुआ था जिस समय क्षत्रिय नरेश अपने बल के अभिमान से प्रेरित होकर अपने मनोऽनुकूल नैतिक नियमों का सर्वत्र प्रचार करना चाहते थे। अतएव उनकी मनमानी राजनीति के विरुद्ध, जिस समय देश में घोर आन्दोलन होने वाला था, व्यास ने महाभारत में जरासन्ध के मुख से उस स्थिति का वर्णन कराया है और वाल्मीकिने राम के मुख से उसका बार बार प्रतिवाद कराया है। उन्होंने अपने ग्रन्थ में विलक्षण कवि-कौशल से दो प्रकार के जन-समाज के चित्र बनाये हैं। दोनों ही चित्र अपनी अपनी पूर्णता की चरम सीमा तक पहुँचाये गये हैं। एक चित्र तो एक ऐसे आदर्श-समाज का है जिसमें समाज को उन्नत करने और उसका गौरव बढ़ाने वाली सामग्रियों का बहुत ही उत्तम रीति से उपयोग किया जाता है। दूसरा चित्र एक ऐसे अमानुषिक समाज का है जहाँ बल, अत्याचार, लोभ, अभिमान, इच्छा, स्वातंत्र्य आदि का ही साम्राज्य है। कवि ने राम और रावण को इन्हीं दोनों तरह के समाजों के आदर्श-पुरुष मान कर उनके युद्ध का परिणाम दिखाया है। इसीसे वाल्मीकि का काव्य उस समय की नैतिक अवस्था का श्रेष्ठ उदाहरण माना जाता है, जिस समय हिन्दुओं में वीरता का पूर्ण विकास था।

व्यास वाल्मीकि के बाद हुये हैं। उस समय देश में और भी अधिक अशान्ति फैली हुई थी। उस अशान्ति से सम्बन्ध रखने वाली अनेक कथायें सुनने में आती हैं। वे यदि सत्य हों तो यह अवश्य ही मान लेना पड़ेगा कि वाल्मीकि के आदर्श के अनुसार साम्राज्य-स्थापन करने और समाज का संस्कार

करने में व्यास ने बहुत सहायता की है। व्यास बड़े आदमियों की उस राजनीति के प्रचार के पक्षपाती थे, जो देश के प्रधान पुरुषों के मनोऽनुकूल थी। वे चाहते थे कि देश में एक ऐसा साम्राज्य स्थापित हो जो उच्च प्रवृत्ति का उदाहरण समझा जा सके और जो नीच प्रवृत्ति को दबाने या उसको दूर करने में समर्थ हो। वाल्मीकि और व्यास के विचारों में अन्तर है। वाल्मीकि ने देश की सामयिक स्थितिका ख्याल न करके प्राचीन समय के आदर्श को ग्रहण किया। पर व्यास का सारा लक्ष्य अपने ही समय की स्थिति पर था। उसके साथ सहानुभूति दिखाते हुये वे उसे, कुछ समयानन्तर, आदर्श–रूप में परिणत करने की आशा रखते थे। वाल्मीकि पुराने और प्रतिष्ठित राज-नियमों के पक्षपाती थे। वे समाज को प्राचीन समय के आदर्श पर ले जाना चाहते थे। किन्तु व्यास राजनीति के नवीन संस्कार के पक्षपाती थे। इसी से उन्होंने प्रचलित नियमों का विरोध नहीं किया उन्होंने उन नियमों को भावी संस्कार का आधारमान और निष्काम धर्म की शिक्षा से उन्हें आदर्श-रूप में परिणत किया।

व्यास के कोई हजार वर्ष बाद कालिदास उत्पन्न हुये। उन्होंने भी अपने समय की सामाजिक अवस्था के बहुत ही अच्छे चित्र खींचे हैं। वाल्मीकि और व्यास के समय के बीच जितनी घटनायें हुई थीं उनसे कहीं अधिक घटानायें कालिदास और व्यास के समय के बीच में हुईं। कालिदास का प्रादुर्भाव ऐसे समय में हुआ था, जब देश में सब जगह पैशाचिक भाव फैला था और जब उसे दबाने के लिये बौद्ध मत की सृष्टि हो चुकी थी। सार्वजनिक कामों में सर्वत्र शिथिलता दिखाई देती थी। लोग प्रत्येक

विषय के नियम बनाने की धुन में थे। दर्शन-शास्त्र नियम-बद्ध हुआ; धर्म-शास्त्र और नीति-शास्त्र के नियम बने; विद्या और ज्ञान के जितने विषय हैं सभी नियम-बद्ध हुये। इस समय एक ओर तो बड़े २ विद्वानों, नीति-शास्त्रिकों, नैयायियों और दार्शनिक तत्व-वेत्ताओं के ग्रन्थ बन रहे थे। दूसरी ओर जातीय उत्साह और सांसारिक जीवन के सौन्दर्य के विषय में काव्यों की रचना हो रही थी। लोगों के जीवन में विलासिता घुस गई थी। वे जीवन और सौन्दर्य ही को सब कुछ समझने लगे थे। उनका उन्हें बड़ा अभिमान था। चित्रकारी, गृह-निर्माण विद्या, संगीत, नाट्यकला, वनस्पति-शास्त्र आदि विलासिता की सूचक सभी विद्यायें उन्नति की चरम सीमा तक पहुँचाई गई थीं।

इसी ज़माने के शुरू में, यहाँ दर्शन-शास्त्र के नियम बन रहे थे और शिल्प और विज्ञान की उन्नति हो रही थी। उपनिषदों के आधार पर पुराणों की रचना हो रही थी। वेदान्त और सांख्य के उत्तम सिद्धान्तों का मेल, योग की क्रियाओं और न्याय-सम्बन्धी विचारों के साथ होने लगा था। किन्तु ये काम पूर्ण नहीं होने पाये थे कि उज्जयिनी में कालिदास प्रगट हुये। उन्होंने लोगों की सामयिक प्रवृत्ति का पूरा ज्ञान प्राप्त किया था। उनके काव्यों से मालूम होता है कि वे बड़े भारी विद्वान् थे। उनका सम्बन्ध बड़े २ विद्वानों से था। वे हमेशा अमीरों के साथ रहा करते थे। ऐशो-आराम से रहना उन्हें बहुत पसन्द था। शिल्प और विज्ञान का उन्हें अच्छा ज्ञान था। राजनीति के वे पूरे पंडित थे। दर्शन-शास्त्र में भी उनकी अच्छी गति थी। कई बातों में वे शेक्सपियर के समान थे। शेक्सपियर की तरह

वे भी कुछ दिन पहले की घटनाओं को सामयिक रूप देकर उनका वर्णन करते थे। सामयिक घटनाओं का उल्लेख करते समय कभी २ उनके भावी फल को भी वे झलका देते थे। शेक्सिपयर की तरह उन्हें धर्म का भी खूब ख्याल था।

कालिदास की तर्कना-शक्ति बहुत ही अच्छी थी। शृंगार और करुणा रस के वर्णन में वे सिद्ध-हस्त थे। कालिदास में प्रधान गुण यह था कि वे प्रत्येक काव्योपयोगी सामग्री को काव्य के प्रत्येक अंश को—बड़े ही कौशल से सुन्दर बना देते थे। अपने वर्णनीय विषय की मूर्ति पाठकों के सामने खड़ी कर देने की जैसी शक्ति कालिदास में थी वैसी और किसी कवि में नहीं पाई जाती।

बड़े २ कवि जब बहुत उत्तेजित होकर किसी बात का वर्णन करने लगते हैं तभी उनमें उस बात को प्रत्यक्षवत् दिखा देने की शक्ति आती है। पर कालिदास में यह विलक्षण शक्ति सब समय वर्त्तमान रहती थी। इसी शक्ति के साथ अपनी सौन्दर्य-कल्पना की सर्व-श्रेष्ठ शक्ति को मिला कर वे काव्यचित्र बनाया करते थे। वे जैसे उत्तम विषय की कल्पना कर सकते थे वैसे ही उसे खूबसूरती के साथ सम्पन्न भी कर सकते थे। भाषा और शब्दों के सौन्दर्य तथा उनकी ध्वनि और अर्थ आदि का भी वे बड़ा ख्याल रखते थे। उन्होंने संस्कृत-भाषा के भाण्डार से बहुत ही ललित छन्दों और भाव-पूर्ण सरल शब्दों को चुन चुन कर अपनी कविता के काम में लगाया है। इससे उनकी रचना देव-वाणी की तरह मालूम होती है। कालिदास की भावोद्बोधन-शक्ति ऐसी अच्छी थी कि पिछले हजार वर्ष के संस्कृत-साहित्य में सर्वत्र उसीकी

प्रतिध्वनि सुनाई पड़ती है। उनकी कविता में संक्षिप्तता, गम्भीरता और गौरव—तीनों बातें पाई जाती हैं। भाषा की सुन्दरता और प्रसङ्गानुकूल शब्दों की योजना से उनकी रचना का सौन्दर्य और माधुर्य्य और भी बढ़ गया है। यों तो कालिदास ने सभी विषयों का वर्णन, बड़े ही ललित छन्दों में किया है। पर उनके ऐतिहासिक काव्य और नाटक बहुत ही अच्छे हैं। ऐतिहासिक काव्य-रचना में कालिदास मिल्टन से भी बढ़ गये हैं। उनके नाटकों की भाषा में असाधारण सुन्दरता और मधुरता है। वह भाषा बोल-चाल में व्यवहार करने लायक है। कालिदास को इन्हीं श्रेष्ठ गुणों से युक्त होकर ऐसे समय में जन्म लेने का सौभाग्य प्राप्त हुआ जिसके साथ उनकी स्वाभाविक सहानुभूति थी। उस समय की सभ्यता उनके वर्णन करने की रुचि के अनुकूल थी। यह सभ्यता विलासिता में, सौन्दर्य और शिल्प की रुचि में, शिष्टाचार में, सांसारिक विषयों के सूक्ष्म ज्ञान में, और विद्या तथा बुद्धि को बहुत आदर की दृष्टि से देखने में, यूरोप की सभ्यता से बहुत कुछ मिलती-जुलती थी। फ्रान्स में, चौदहवें लुई के राजत्व-काल में जैसी धार्मिक और नैतिक चर्चा होती थी वैसी ही भारतवर्ष में कालिदास के समय में होती थी। उस समय धर्म केवल शिव की उपासना करने और लोगों को दिखाने के लिये था; चाल-चलन के सुधार के लिये नहीं। उस समय किसी धर्म-सम्प्रदाय का अनुयायी न होना बुरा समझा जाता था; पर विलासिता या विषय-वासना में लिप्त होना बुरा नहीं समझा जाता था। उस समय के राजा भी बड़े विलासी थे। राज्य में शान्ति बनी रखने और वंश-परम्परागत सत्यतानुयायी

नियमों का पालन करने की इच्छा से ही राजाओं के दरबार में धार्मिक और नैतिक बातों का तदनुकूल समर्थन होता था; धार्मिक या नैतिक बुद्धि की प्रेरणा से नहीं। अच्छी कविता में वर्णन किये गये धार्मिक विचार सुनकर वे उतने ही प्रसन्न होते थे, जितने कि विषय-वासना का वर्णन सुनकर होते थे, इस समय धर्म की ओर लोगों का ध्यान पहले की अपेक्षा बहुत कम था। शराब पीने की आदत बहुत बढ़ गई थी। चरित्र की शुद्धता की तरफ़ भी लोगों का बहुत कम ध्यान था। इतिहास से पता लगता है कि दूसरे देशों में जब जब समाज की ऐसी अवस्था हुई है तब तब वहाँ का पारिवारिक बन्धन बहुत ढीला पड़ गया है और गृहस्थाश्रम में बहुत कुछ फेरफार भी हुआ है। पुराने ज़माने में रोम-देश की यही दशा हुई थी। पन्द्रहवीं शताब्दी में इटली की भी यही दशा हुई थी और, यही दशा बरबन लोगों के राजत्व-काल में फ्रान्स की और स्टुअर्ट लोगों की अधीनता में इंग्लैंड की हुई थी।

कालिदास के समय में शिल्प-कलायें खूब उन्नत थीं। इससे प्राकृतिक सौन्दर्य-दर्शन की चाह बहुत बढ़ गई थी। पहाड़ों और जंगलों की शोभा, झीलों और नदियों की रमणीयता, पशुओं और पक्षियों के जीवन की मोहकता पर लोग मुग्ध होने लगे थे। इसके सिवा बौद्ध मत के प्रभाव से लोग वृक्षों, लताओं और पहाड़ों को भी जीवधारी समझने और पशु-पक्षियों में भी भ्रातृ-भाव की स्थापना करने लगे थे। इन कारणों से कालिदास को सौन्दर्य्य-वर्णन में बहुत सहायता मिली। उन्होंने अपने अपूर्व कवि-कौशल से अनूठे अनूठे पौराणिक दृश्यों पर नये नये बेल बूटे काढ़ कर उनकी सुन्दरता और भी बढ़ा दी। आँख, कान,

नाक, मुंह आदि ज्ञानेन्द्रियों की तृप्ति के विषय, तथा कल्पना और प्रवृत्ति, यही बातें काव्य-रचना के मुख्य उपादान हैं। कालिदास ने इन सामग्रियों से एक आदर्श-सौन्दर्य की सृष्टि की है। कालिदास के काव्यों से स्वर्गीय सौन्दर्य की आभा झलकती है।

यह समय वैष्णव-धर्म के विकाश का था। इस धर्म से सम्बन्ध रखने वाले पुराणों की रचना हो रही थी। इस धर्म में ईश्वर से वैसा ही प्रेम करने की शिक्षा मनुष्य को दी गई है जैसा प्रेम प्रेयसी को अपने प्रेमी से होता है। शैव धर्म का तब तक प्रादुर्भाव न हुआ था। किन्तु कालिदास के काव्यों से पता लगता है कि बुद्धिमानों के मानस क्षेत्र में उसका अंकुर उग चुका था।

कालिदास का कुमार-सम्भव बहुत ही उत्तम काव्य है। उसमें शिव और पार्वती के विवाह की कथा है। वास्तव में कवि ने उसमें पुरुष और प्रकृति के संयोग का चित्र दिखाया है। इस काव्य में कवि ने यह भी स्पष्टता-पूर्वक दिखाया है कि जीवात्मा किस तरह ईश्वर की खोज करता है और कैसे उसे प्राप्त करता है। इस तरह कवि ने धर्म-सम्बन्धी दो बड़े भारी आध्यात्मिक और दार्शनिक तत्त्वों को स्त्री-पुरुष के चरित्र के व्याज से, प्रकट कर दिखाया है। सांसारिक विषयों के वर्णन का यह बहुत ही अच्छा ढंग है। इस पर विचार करने से मालूम होता है कि वैष्णव-धर्म-सम्बन्धी पुराणों में जिस सिद्धान्त का पीछे से विकाश हुआ उसे कालिदास ने पहले ही झलका दिया था। इसीसे पहले कहा जा चुका है कि कालिदास, कभी कभी वर्त्तमान समय की घटना का वर्णन करते समय उसीके भावी परिणाम को भी झलका दिया करते थे। इस बात से यह भी समझा जा सकता

है कि सांसारिक विषयों में लिप्त होने पर भी मंझले जमाने के भारतवासियों में धार्मिक और दार्शनिक बातों की कल्पना की शक्ति कितनी थी।

ऋतु-संहार में कालिदास के समय की सभ्यता की प्रारम्भिक अवस्था का चित्र है। रघुवंश, वीर-चरित्र-सम्बंधी काव्य है। मेघदूत शोक-संगीत का उदाहरण है। शकुन्तला नाटक-सम्बन्धी चित्र है और कुमार-सम्भव धार्मिक और दार्शनिक कथा है। कालिदास ने अपने समय की सभ्यता के अनेक तरह के चित्र अपने काव्यों में दिखाये हैं। इसीसे वाल्मीकि और व्यास की तरह से भी अपने समय की सभ्यता के उदाहरण कहे जा सकते हैं।

(श्रीयुत महावीर प्रसादजी द्विवेदी
एक लेख का कुछ संक्षेपित)

दसवाँ गुच्छ

प्रकृति-सौंदर्य

हरिचरण क्षुण्णोपांताः सशाद्वलनिर्झराः ।
कुसुमकलितैर्विष्वग्वातैस्तरंगित पादपाः ॥
विविध विहगश्रेणी चित्रस्वन प्रतिनादिता ।
मनसि न मुदं दध्युः केषां शिवा वनभूमयः ॥

—सुभाषित ।

भावार्थ—जहाँ हरी हरी दूब का गलीचा सा बिछा है, जिस पर हिरनों के खुरों के चिह्न चिह्नित हैं, निकट ही सुंदर झरने बह रहे हैं, कमनीय कुसुमों के मधुर सुगंध से सुगंधमय पवन बह रही है और तरुवर हिल रहे हैं, उन पर तरह तरह के बिहंगम अपनी तरह तरह की मंजुल ध्वनि से संपूर्ण प्रदेश को प्रतिनादित कर रहे हैं । ऐसी परम रमणीय वनस्थली किसके मन को आनंदित न करेगी ?

प्रकृति की सुषमा सचमुच सुंदर है, परंतु उसे समझने की शक्ति थोड़े ही लोगों में होती है ।

प्रचंड ऊर्मिमय गंभीरघोषी महासागर का प्रथम दर्शन करने, निर्जन और घोर अरण्य में, जहाँ चिड़ियाँ पंख नहीं मारतीं, प्रथम ही प्रवास करने, पृथ्वी के ऊँचे पहाड़ों की चोटियों के

स्फोट के कारण महाभयंकर ज्वालामुखी के डरावने मुख से, पृथ्वी के पेट से वह निकले हुए पत्थर मिट्टी धातु इत्यादि पदार्थों के रस के प्रवाह को प्रथम ही देखने अथवा नितांत शीत के कारण बर्फ से ढँके हुए स्फटिकमय प्रदेश में चलने से जो नया और अपूर्व अनुभव प्राप्त होता है उसका कुछ अकथनीय संस्कार मन पर होता है। ये चमत्कारमयी प्राकृतिक घटनाएँ मानों प्रकृति देवी की लीलाएँ हैं। इनके देखनेवाले को ऐसा मालूम होता है कि मानो वह किसी नये जगत् में खड़ा है और उसका कल्पना और वर्णन-शक्ति स्तंभित हो गई है।

प्रकृति के सौंदर्य को समझने के पूर्व हमें उसे देखने का अभ्यास करना चाहिए। प्रकृति की तरफ ध्यान देने की अपेक्षा उसे देखना सहज है और जिस वस्तु की ओर मनुष्य देखे उसके रहस्य को जान लेना तो मनुष्य का स्वभाव ही है। सौंदर्य-शास्त्र का ज्ञाता रस्किन लिखता है कि—"हमारी जीवात्मा इस भूमि पर एक काम सर्वदा किया करती है—अर्थात् प्रकृति-निरीक्षण, और जो कुछ वह देखती है उसका वर्णन करती है।" ज्ञानवान् मनुष्य की आँखें हमारी आँखों से कुछ भिन्न नहीं हैं परंतु हमें जो नहीं दिखाई देता वह उसे दिखाई देता है। कहा भी है—

बदन, श्रवण, दृग, नासिका, सब ही के इक ठौर।
कहिबो सुनिबो देखिबो, चतुरन को कछु और॥

जो कोई ध्यानपूर्वक देखने का अभ्यास करेगा उसे वर्षा ऋतु में हर घड़ी एक नया दृश्य दिखाई देगा। खेत में या जंगल में खड़े होकर देखने में अपूर्व वन-शोभा दिखाई पड़ती है।

आकाश घड़ी घड़ी रंग बदल कर अपनी निर्मल शोभा और घनों की घटा की छाया भूमि पर डालता हुआ दिखाई देगा।

प्राकृतिक सौंदर्य को देख आनंद होना मन का एक उत्तम गुण है। इस गुण का बीज यदि हम नष्ट कर देंगे तो हमारे चरित्र पर उसका अनिष्टकारक परिणाम होगा। इसलिये जिसे प्रकृति की सुंदरता देखकर आह्लाद नहीं होता उसका दुर्जन होना साधारण बात है किंतु प्राकृतिक सौंदर्य से प्रेम रखने वाला मनुष्य हँसमुख, आनंदी और प्रसन्नचित्त होता है, इसमें संदेह नहीं।

विकसित सहकार भारहारि-परिमल पुंजित गुंजित द्विरेफः।
नव-किसलय-चारु-चामर-श्रीर्हरति मुनेरपि मानसं वसंतः॥

भाव—आम्र-मंजरी की सुगंध के चारों ओर फैल जाने से भृंगवृंद गुँजार करते हुए उन पर मोहित हो जाते हैं। वृक्षों के नवीन कोमल पत्ते फूट कर सुंदर चँवर की भाँति सुहाते हैं, ऐसे वसंत की शोभा मुनिजनों के भी मन को हर लेती है, फिर मनुष्य का कहना ही क्या है?

"कूलन में केलिन कछारन में कुंजन में,
क्यारिन में कलित कलीन किलकंत है।
कहै पदमाकर पराग हू में पौन हू में,
पातिन में पीकन पलाशन पगंत है॥
द्वार में दिशान में दुनी देश देशन में,
देखो द्वीप द्वीपन में दीपति दिगंत है।
बीथिन में ब्रज में नवेलिन में वेलिन में,
वनन में बागन में बगरयो बसंत है॥

यह बसंत-वर्णन अद्वितीय है। अपने प्राचीन कवियों के सृष्टि-चमत्कारों के वर्णन जहाँ तहाँ ऋतु-वर्णन के रूप में देखने से उनकी प्रकृति के सूक्ष्म अवलोकन की शक्ति का परिचय मिलता है।

फूलों को कवि प्रथम स्थान देते हैं। सचमुच वनश्री का दृश्य कल्पना के सम्मुख आते ही प्रथम फूलों का दर्शन होता है। ऐसा जान पड़ता है कि पुष्पों को प्रकृति देवी ने मनुष्य जाति के ही सुख के लिए बनाया है। बालक फूलों पर बहुत प्रीति करते हैं। सुंदर और शांतिमय आनंद देनेवाले फूलों पर बागवान, कृषक ऐसे गरीब लोग भी प्रीति करते हैं। ऐश आराम में पड़े हुए विषयी लोग फूल तोड़कर अपने उपभोग में लाते हैं। नागरिकों और ग्रामीणों की फूलों पर एक सी प्रीति होती है।

हर एक ऋतु के फूल अलग अलग होते हैं। फूलों के उद्भव का समय वसंत, ग्रीष्म और शरद्ऋतु हैं, तथापि जंगलों में, पहाड़ों में, वनस्थली में, समुद्र तीर पर सर्व काल में भाँति भाँति के पुष्प खिलते रहते हैं।

कुसुम-दर्शन से केवल नयनों को ही सुख नहीं होता उनसे ज्ञान और उपदेश प्राप्त करनेवाले के लिए उपदेश भी मिल सकता है। पुष्पों के मनोहर रंग और विचित्र आकृतियों को देख ऐसा प्रतीत होता है मानों किसी विशेष और बड़े उद्देश्य के लिए ईश्वर ने उन्हें बनाया है।

फूलों के समान वृक्ष और लताएँ भी बड़ी रमणीय मालूम होती हैं। वे प्राकृतिक दृश्य के सौंदर्य के पोषक हैं। बड़े बड़े वृक्षों में छोटे पुष्प लगते हैं और छोटे वृक्षों और वनलताओं में बड़े फूल आते हैं। उनकी शोभा निराली है। वृक्षों की पल्लवश्री

सदा सर्व काल में अपनी प्रशांत शोभा बनाये रखती है और हर एक वृक्ष सुंदर चित्र सा बना रहता है।

शीत प्रदेश के वन ग्रीष्म ऋतु के दिनों में बहुत शोभायमान दिखाई पड़ते हैं, परंतु जाड़े के दिनों में जब बर्फ पड़ती है, तब वृक्षों के पत्ते झड़ जाते हैं और पल्लव-रहित शाखाओं पर बर्फ का मुलम्मा चढ़ जाता है। वह दृश्य अपने ढंग का निराला होता है। उष्ण प्रदेशों के अरण्यों की और जंगलों की शोभा इससे बहुत भिन्न होती है। वहाँ वृक्ष सीधे, ऊँचे, गगनचुंबी दिखाई पड़ते हैं। नीचे कुछ दूर तक एक बड़ा सरल स्कंध होता है। उसके आस पास का भाग सघन छाया के कारण अत्यंत शीतल और रम्य दिखाई देता है। ऊपर घनी शाखाओं का जाल मेघा-डंबर के समान फैला होता है। इन सघन जंगलों में रविकिरणों की अगवानी करने की इच्छा से मानों सब कुछ ऊपर ही को चढ़ता हुआ दिखाई देता है। कुछ जानवर वृक्षों पर चढ़ जाते हैं। पक्षी तो तरुवरों के शिखरों की ऊँची से ऊँची डालियों पर बैठे चहक चहककर मधुर गीत गाया ही करते हैं। साँप, अजगर से रेंगनेवाले प्राणी भी ऊपर चढ़ जाते हैं। बेल और लताएँ तो वृक्षों को लिपटती हुई मानों प्रेमालिंगन का सुख उठा रही हैं और ऊपर तक बढ़ी चली जाती हैं। इनकी इतनी अधिक जातियाँ उष्ण प्रदेशों में होती हैं जितनी अन्य देशों में देखने में नहीं आतीं। दक्षिण के अरण्यों का वर्णन जो महा कवि भवभूति ने किया है वह उष्ण प्रदेशों की वन-शोभा का उत्तम दर्शक है।

ये गिरि सोय जहाँ मधुरी मदमत्त मयूरनि की धुनि छाई।
या वन में कमनीय मृगानि की लोल कलोलनि डोलती भाई॥

सोहै सरित्तट धारि घनी जलवृच्छन की नव नील निकाई ।
मंजुल मंजु लतानि की चारु चुभीली जहाँ सुखमा सरसाई ॥
लसत सघन श्यामल विपिन, जहँ हरषावत अंग ।
करि कलोल कलरव करत, नाना भाँति विहंग ॥
फल भारन सों झालरे, हरे वृच्छ झुकि जाँहि ।
झिलमिलाति झाँई सुतिन, गोदावरि जल माँहि ॥
जहाँ बाँस-पुंज कंज कलित कुटीर माँहि
घोरत उलूक भीर घोर घुघियायकैं ।
तासु धुनि प्रतिधुनि सुनि काककुल मूक
भय-बस लेत ना उड़ान कहुँ धायकैं ॥
इत उत डोलत सु बोलत हैं मोर, तिन
सोर सन सरप दरप बिखरायकैं ।
परम पुरान सिरोखंडत तरु कोटर में
मारत स्वकुंडली सिकुरि घबरायकैं ॥
जिन कुहरनि गदगद नदति, गोदावरि की धार ।
शिखर श्याम घन सजल सों, ते दक्खिनी पहार ॥
करत कुलाहल दूरि सों, चंचल उठत उतंग ।
एक दूसरी सों जहाँ, खाइ चपेट तरंग ॥
अति अगाध विलसत सलिल, छटा अटल अभिराम ।
मन भावन पावन परम, ते सरि संगम धाम ॥

—उत्तररामचरित ।

कितनी ही जंगली जातियाँ वृक्षों को देवता मानकर पूजती हैं । इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं है, क्योकि जब हम अकेले अरण्यों में जाते हैं तब यदि कोई एक वृक्ष हम से वार्तालाप करने लगे तो हमे उसका कुतूहल होगा और आनंद भी होगा ।

लिये रचा है। पर्वत मनुष्यों की शिक्षा के विद्यालय, भक्ति के मंदिर, ज्ञान की पिपासा तृप्त करने के लिये ज्ञाननिर्झरों से पूर्ण, ध्यानस्थ होने के लिए प्रशांत और निर्जन मठ और ईश्वराराधन के लिये पवित्र देवालय हैं। इन प्रकांड देवालयों में चट्टानों के द्वार, मेघों के फर्स, ऊँचे गिरिशिखरों से गिरते हुए जलप्रपातों की गर्जना का संकीर्तन, बर्फ के ढेरों से बनी हुई यज्ञवेदियाँ और स्थंडिल तथा अनंत तारकपुंजों से विशोभित नीले आकाश का शामियाना है।

है विश्वमंदिर विशाल सुरम्य सारा।
अत्यंत चित्तहर निर्मित ईश द्वारा॥
जो लोग प्रेक्षक यहाँ पर आ गए हैं।
गंभीर विश्व लख विस्मित वे हुए हैं।

—कुसुमांजलि।

आकाश की सुंदरता मन को मुग्ध कर देती है। जिस समय मन उदास हो और उद्विग्न हो उस समय अपने मन को प्रसन्न करने के लिये सुंदर विशाल आकाश-मंडल की ओर देखो। यदि दोपहर का समय है तो आकाश के नील मंडप में इतस्ततः फैले हुए बादल उसे विचित्र बनाते हैं। प्रातःकाल और सायंकाल के समय के आकाश का दर्शन तो सर्वदा ही अवलोकनीय होता है। रात्रि का समय है तो आकाश के ऐश्वर्य का कहना ही क्या है! वह तेजस्वी तारागणों से भरा मानों रत्नों से भरे थाल की भाँति दिखाई देता है। नक्षत्रों का नियमित अस्तोदय, उनका भ्रमण, उनकी गति इत्यादि देख कर कुतूहल होता है और ईश्वर की अनंतता और विश्वनिर्माण शक्ति देख कर उसके विषय में

पूज्य भाव पैदा होता है। जिस समय हम तारों की ओर देखते हैं तो वे हमें स्थिर और शांत दिखाई देते हैं परंतु वे उस समय कल्पनातीत वेग से यात्रा करते रहते हैं। यह चमत्कार स्वप्न में भी हमारी समझ में नहीं आता।

संपूर्ण आकाश-मंडल में दस करोड़ से भी अधिक तारे हैं। सिवाय इसके कितने ही ग्रहों के उपग्रह भी हैं। इतना ही नहीं, किंतु जिनका अब तेज नष्ट हो गया है ऐसे अनेक गोले आकाश में हैं। वे अपने समय में सूर्य के समान प्रकाशमान थे, परंतु अब तेजहीन और शीतल हो गए हैं। एक वैज्ञानिक कहता है कि हमारा सूर्य भी लगभग एक करोड़ सत्तर बरस के बाद वैसा ही तेज हीन हो जायगा। धूमकेतु अर्थात् पुच्छल तारे भी आकाश में हैं। उनमें से थोड़े ही दूरबीन के बिना दिखाई पड़ सकते हैं। इनको छोड़ आकाश में भ्रमण करने वाले अनंत तारापुंज हैं जो हमारी दृष्टि से बाहर हैं।

तारों की अनंत संख्या को देख मनुष्य कुंठित हो जाता है। फिर उनके विशाल आकार और एक दूसरे की दूरी का ज्ञान होने पर उसका क्या हाल होता है, इसका पूछना ही क्या है। समुद्र अत्यंत विस्तृत और गहरा है और उसे असीम कहने की प्रथा है। परंतु आकाश से यदि समुद्र की तुलना की जाय तो समुद्र क्षुद्र प्रतीत होता है। महाकाय बृहस्पति और शनि की तुलना पृथ्वी से कीजिये तो पृथ्वी बिलकुल छोटी मालूम होगी और सूर्य से उन दो ग्रहों का साम्य किया जाय तो सूर्य के सामने वे बिलकुल छोटे दिखाई देंगे। संपूर्ण सूर्यमाला से यदि अपने नित्य के सूर्य की तुलना की जाय तो वह कुछ भी नहीं है।

छटा दिखाती हैं। जहाँ प्रकाश नहीं पड़ता, वहाँ का भाग श्यामल छाया में धुँधला दिखाई पड़ता है। दोपहर के समय समुद्र अपना रंग बदल लेता है। वह बिलकुल गहरा नीलांबर पहने दिखाई देता है और सामने के द्वीप में छायामय अरण्य, हरी दूब से भरे मैदान और पीले रंग के खेत साफ देखने में आते हैं। टूटी चट्टानों के भाग भी स्पष्ट झलकते हैं और मछुओं की डोंगियाँ और काले पाल दृष्टिगोचर होते हैं।

समुद्र का यह स्वरूप बहुत समय तक नहीं टिकता। अचानक आकाश में बादल छा जाते हैं। हवा जोर से बहने लगती है और तूफान के चिह्न दिखाई देते हैं। वृक्षों के पत्तों पर गिरती हुई पानी की बूँदों की टप टप आवाज सुनाई देती है और सामने का किनारा मानों तूफान के भय से छिपा जाता है। देखते देखते समुद्र का रंग काला हो जाता है। वह खौलता हुआ गंभीर गर्जन करता है। जब वह शांत हो जाता है तब फिर घननील कलेवर धारण करता है और सूर्य के अस्त होने के पूर्व उस पर धुँधलापन छा जाता है। पर अस्तभानु के समय फिर एक नई सुनहरी छटा से उज्ज्वल और चमकीला बन जाता है। इस प्रकार समुद्र के रंग दिन भर बदलते ही रहते हैं।

समुद्र की शोभा में रात्रि के समय भी भाँति भाँति के परिवर्तन होते रहते हैं। कभी घना अँधेरा छा जाता है, कभी अनंत तारागणों से शोभित आकाश के सामने वह प्रशांत दर्पण की नाईं स्थिर दिखाई देता है, कभी चंद्र की सुंदर चाँदनी में सारा विश्व धुल कर धवल और शीतल बन जाता है।

कभी तूफान के समय आकाश में इंद्रधनुष दिखाई देता है।

इस इंद्रधनुष के अत्यंत सुंदर और प्राकृतिक रंगों के मेल को देख नेत्र सुखी हो जाते हैं। यह एक अद्वितीय वस्तु है। जिस रँगरेज ने इंद्रधनुष के रंग को रँगा है वह कोई अद्वितीय कारीगर है।

रंगों के ज्ञान का महत्व भली भाँति हमारी समझ में नहीं आता। यदि रंग का ज्ञान न होता तो छाया, आकार, प्रकाश इत्यादि की सहायता से जुदे जुदे पदार्थों की पहचान कठिन हो जाती। तथापि जिस समय हम अपने आप से यह प्रश्न करते हैं कि सौंदर्य्य क्या वस्तु है ? तो तुरंत ही सहज रीति से हमारे मन में भिन्न भिन्न रंगों के पक्षी, चिड़ियाँ, कीट, पतंग, पुष्प, रत्न, आकाश, इंद्रधनुष इत्यादि चमत्कारिक पदार्थों की कल्पना होती है।

प्रकृति देवी ने हमें जो ज्ञानेंद्रियाँ दी हैं यह उसकी हम पर बड़ी कृपा है, बड़ा उपकार है। कान न होते और श्रवण की शक्ति न होती तो संसार का सुस्वर संगीत, प्रेमी जनों का मधुर वार्तालाप और वाद्यों की मनोहर ध्वनि हमारे लिये कुछ नहीं थी। हमारे नेत्रों की रचना में एक तिल भर फर्क हो जाता तो इस विशाल विश्व का वैभव, पदार्थों के सुंदर आकार, रंगों की चमक दमक, प्रकृति की वन-शोभा, पर्वत, नदी, सरोवर इत्यादि के प्राकृतिक दृश्य देखने से हम वंचित रह जाते। रसनेंद्रिय के अभाव से सुंदर सुस्वादु खाद्य पदार्थ हमारे लिये नष्ट हो जाते—इस प्रकार प्रकृति के संपादित किये हुए संपूर्ण सुख साधनों का उपभोग हमें कदाचित् न मिलता।

सौंदर्योपासक रस्किन ने लिखा है कि पर्वतों की ओर देखते ही मालूम होता है कि उन्हें ईश्वर ने केवल मनुष्य के ही

सिरियस नामक एक ग्रह इस सूर्य से भी हजारों गुना विशाल और लाखों कोस दूर है। यह सूर्यमाला आकाश के एक छोटे से प्रदेश में घूमती रहती है। इस सूर्यमाला के चारों ओर दूसरी ऐसी ही बड़ी बड़ी ग्रहमालाएँ भ्रमण कर रही हैं। नक्षत्रों में से कितने ही इतनी दूरी पर हैं कि प्रकाश की गति एक सेकंड में एक लाख अस्सी हजार मील होने पर भी उनका प्रकाश हमारी पृथ्वी तक पहुँचने के लिये बरसों का समय लगता है। इन नक्षत्रों के परे और भी न जाने कितने तारे हैं परंतु वे अत्यंत दूर हैं, इस कारण नज़र नहीं आते। दूरबीन से देखने पर भी वे कुहरे की तरह धुँधले दिखाई पड़ते हैं। यद्यपि वैज्ञानिकों ने विश्व की अनंतता में घुस कर बहुत कुछ चमत्कारों का पता लगाया है परंतु उसका पार नहीं पाया है। ये चमत्कार चित्त को हरनेवाले और मनुष्य के आनंदप्रवाह के नित्य बहानेवाले झरने हैं। इसलिये इन चमत्कारों के अनुभव से संसार के क्षुद्र दुःख और बाधाओं की परवा नहीं करनी चाहिए।

(गणपति जानकीराम दूबे)

ग्यारहवाँ गुच्छ

इन्दु की कृतज्ञता

"करणं परोपकरणं येषां केषां न ते वंद्याः ।"

बालक इन्दु को यह सब बातें ज़रा भी मालूम नहीं हैं। उसने केवल इतना ही सुना कि उसके रघु दादा को किसी ने मार डाला। ज़मीन, लगान इत्यादि गृहस्थी की अन्य बातें ज्ञानदा इन्दु को न जानने देती थीं। ज्ञानदा को विश्वास था कि यदि वह इन्दु से ये सब बातें कहेगी तो उसके मन में और और भावनायें उठेंगी और लिखने पढ़ने की ओर एकाग्रता न रह जायगी। गृहस्थी में जिन चीज़ों की कमी है उनके बिना चाची कष्ट से काम चलाती है, यह बात वह लड़का होकर भी जानता था। किन्तु यदि चाची से वह घर की कोई बात पूछता तो उसे उत्तर मिलता। "तुम उन बातों की अभी कोई चिन्ता न करो; बच्चा! तुम मन लगा कर लिखो-पढ़ो, जब तक मैं जीती हूँ, गृहस्थी की तुम्हें कुछ भी चिन्ता न होने दूँगी।"

इन्दु अब अकेला ही स्कूल जाता है और अकेला ही लौट आता है। भीमनगर का वह लड़का सुभीता होने के कारण और कहीं पढ़ने गया है। फतेहपुर से गोविन्दबेड़ का मार्ग इन्दु को अब अधिक नहीं जान पड़ता। किन्तु मार्ग दो कोस से भी

अधिक है। इतना मार्ग चलने और लौटने में क्लेश न होता हो, यह बात नहीं। फिर भी संसार में एक आदमी को जो कुछ कष्टदायक प्रतीत होता है, अभ्यासवश दूसरे को उसीमें उतना कष्ट नहीं जान पड़ता।

जाड़े की ऋतु ही और ऋतुओं से कुछ अच्छी है। किन्तु उसमें भी दिन छोटा होने के कारण प्रातःकाल ही नदी में इन्दु जिस समय डुबकी लगाता, उस समय क्षुद्र नदी में भाफ उठती रहती। सन्ध्या के समय स्कूल में छुट्टी हो जाने पर भी उसे चैन न मिलता; उसे दो कोस ज़मीन तय करने के कारण दौड़ते रहना पड़ता, जिससे कभी कभी वह थक कर हाँपने भी लगता था। उसे डर लगा रहता कि कहीं रास्ते ही में सूर्य्य अस्त न हो जायँ और वह घर भी न पहुँच पावे। गर्मियों में स्कूल प्रातःकाल होता है। प्रातःकाल ही घर से चल कर दौड़ता हुआ वह स्कूल पहुँचता तो भी उसे लड़के पढ़ते हुए मिलते। स्कूल से लौटने के समय गर्मी के दिनों की प्रचण्ड धूप शिर पर पड़ती, घर पहुँचते पहुँचते प्रायः दुपहरी हो जाती। दो घड़ी तक न बैठने से शरीर का पसीना भी न सूखता। किन्तु सब से अधिक कष्टदायिनी वर्षा-ऋतु है। इस ऋतु में देहाती रास्ते प्रायः कीचड़मय और जलाकीर्ण रहते हैं। रास्ते में कितनी बार इन्दु को जल पार करना पड़ता, इसका ठिकाना ही नहीं। बीच बीच में नाले भी पड़ते; यदि किसी नाले का बाँध टूट जाता और जल अधिक होता तो इन्दु अपना अँगोछा पहन कर जल पार कर जाता। कीचड़ की तो कोई बात ही नहीं। एक दिन थोड़ी वृष्टि हो जाने से चार पाँच दिन तक कीचड़ बना रहता, मैदान के रास्ते में

नाली और मोरी द्वारा पानी निकलने का कोई बन्दोबस्त नहीं। फतेहपुर से गोविन्दबेड़ के मार्ग में अधिकतर मैदान ही है। पहले एक छोटा मैदान, उसके बाद वह छोटी नदी जो फतेहपुर के नीचे पूर्व की ओर बहती है। नदी पार करने पर एक बड़ा ऊसर; उसकी समाप्ति के बाद बस्ती; वहाँ से थोड़ी दूर पर गोविन्दबेड़ का स्कूल। दो तीन महीने तक ऐसे कीचड़मय रास्ते में चलने से इन्दु के पैरों में घाव हो जाते। सोने के पहले बेचारा बालक प्रायः यही कहा करता कि 'चाची! पैरों में बड़ी जलन उठ रही है। अंगुलियाँ कीचड़ ने खा ली हैं।' ज्ञानदा उन घावों को देखती और उनमें या तो ताज़ा चून, नहीं तो दीपक का गरम तेल लगा देती। इन्दु के लिये यही धन्वन्तरि-प्रदत्त औषधि थी। उसे विश्वास था कि चाची जो कुछ करेगी सब अच्छा करेगी।

सावन का महीना है। सूर्य्य देव के अस्त होने में अभी बड़ा समय है। किन्तु आकाश मेघाच्छन्न होने के कारण दिन ही में संध्या की छटा देख पड़ती है। इन्दु के स्कूल में छुट्टी हो जाने के उपरान्त मेघ क्रमशः आकाश को घेरने लगे। आकाश में एक टुकड़ा भी बाक़ी न रहा जो मेघों से घिरा न हो। मेघ अँधियारा बढ़ाने लगे और साथ ही साथ वायु ने भी ज़ोर पकड़ा। वृष्टि के पूर्व-लक्षण देख कर दो एक पक्षी लक्ष्यहीन भाव से उड़ने-फिरने लगे। इन्दु इसी निर्दय गगन के नीचे नीचे घर की ओर जा रहा है। वह काले किनारे की एक विलायती धोती पहने और एक अधमैली विलायती चादर ओढ़े है, बाईं बग़ल में कई पुस्तकें और काग़ज़ दबे हैं। जामा, जूता और छतरी कुछ भी पास नहीं। इन्दु गोविन्दबेड़ से चल कर उसी बड़े मैदान

समुद्रयात्रा करने वालों को समुद्र बड़ा प्रिय मालूम होता है। आकाश की अपेक्षा समुद्र अधिक स्वाधीन और ऐश्वर्यशाली है। समुद्र का किनारा अनंत जीवों से तथा वनस्पति से भरा होता है। उनमें से कितने ही प्राणी ज्वारभाटे की राह देखते रहते हैं और कितने ही ऐसे होते हैं जिन्हें समुद्र की लहरों ने समुद्र से बाहर जोर से निकाल कर फेंक दिया है। समुद्र-तट पर खड़े रहने से समुद्र के निकट रहने वाले पक्षियों का कर्णविदारी भय-कारी शब्द सुनाई देता है। समुद्र की वायु का स्पर्श होते ही शरीर में फुरती पैदा होती है और काम करने की इच्छा हो आती है।

समुद्र का स्वरूप सदा बदलता रहता है। प्रातःकाल से सायं-काल तक उसमें कितने ही उलट फेर हो जाते हैं। कल्पना कीजिये की हमारा निवास समुद्र-तट पर है और हम अपने मकान की खिड़की में बैठे नीचे देख रहे हैं। खिड़की के नीचे ही छोटा मैदान है और उसके आगे पृथ्वी नीची होती चली गई है, सामने कोसों की दूरी तक पीली रेत के सुंदर टीले चले गए हैं। इधर भगवान् मरीचिमाली उदित होकर अपनी झिलमिलाती हुई किरणों से समुद्र के विस्तीर्ण प्रदेश को प्रकाशित कर रहे हैं। जैसे जैसे सूर्यनारायण ऊपर आते जाते हैं वैसे वैसे समुद्र प्रदेश प्रकाशित होता जाता है। दूर के उन्नत भाग कुहरे के घन-पटल से ढँक जाते हैं। लगभग नौ बजे के समय समुद्र का रंग फीका होने लगता है। आकाश नीले रंग का होने लगता है और जहाँ तहाँ धुनी हुई स्वच्छ रुई के गोलों की तरह फैले हुए बादल दिखाई हैं। सामने के पथरीले प्रदेश की तराई में खेत, जंगल, पत्थरों की खानें और पर्तें दिखाई देती हैं। टूटी फूटी चट्टानें विचित्र

दिन के समय किसी घोरतर अरण्य में जाने से एक तरह का भय भी मालूम होता है।

जहाँ तरुपल्लवश्री का साम्राज्य है, वहाँ पानी का स्थल अवश्य ही निकट होता है। नदी, सरोवर, निर्झर इत्यादि जहाँ होते हैं, वहाँ की वनज सुंदरता अत्यंत गंभीर होती है। मेघ-मंडल में घन उमड़ कर नीलाकाश की शोभा बढ़ाते हैं। प्रातःकाल के अंधकार-मय कुहरे में सरोवर और नदियों का निर्मल जल स्फटिक के समान चमकीला दिखाई पड़ता है। पानी उद्भिद् जगत् का जीवन है। पानी के आधार पर बड़े बड़े मैदान हरे-भरे दिखाई देते हैं पानी के नित्य प्रवाह से नर्मदा नदी के काटे हुए जो संगमर्मर के बड़े बड़े पर्वत और पत्थर जबलपुर जिले में भेड़ाघाट के पास खड़े हैं उनसे अद्वितीय दृश्य और प्रकृति की कार्य्य-कुशलता का परिचय मिलता है।

महानदी का दर्शन तथा विस्तीर्ण सरोवर का अवलोकन थ हुए पांथ को विश्राम देता है। जलाशय में अवगाहन अत्यंत श्रम-हारक और तापनिवारक है। जलागार के सुख का वर्णन महा-कवि कालिदास ने बहुत ही मनोहर किया है—

सुभगसलिलावगाहाः पाटलसंसर्ग-सुरभि-वनवाताः।
प्रच्छाय-सुलभनिद्रा दिवसाः परिणामरमणीयाः॥

भाव—सुंदर, स्वच्छ और गहरे जलाशय में मनमाना डूब २ कर नहाना सुख देता है। वनोपवनों में से पाटल पुष्पों की सुगंधि से भरी मंद शीतल पवन आनंद देती है। गहरी छाया में नींद तुरंत आ जाती है और सायंकाल का समय नितांत रमणीय होता है। ऐसे ग्रीष्म काल के दिन होते हैं।

में पहुँचा। रास्ते में एक भी आदमी नहीं देख पड़ता। केवल दो एक चरवाहे पशुओं को हाँकते हुए गाँव की ओर भागे जा रहे हैं। पशुओं को सामने कर सोंटा घुमाते और स्वयं दौड़ते तथा पशुओं को दौड़ाते हँफते-हँफाते वे लोग पलायन कर रहे हैं। कोई कोई एक अजीब राग में तानें अलाप रहे हैं। बीच बीच में दो एक पशु रास्ता छोड़ कर जैसे ही इधर उधर जाते हैं वैसे ही वे लोग उन पथ-भ्रष्ट पशुओं की ओर दौड़ते हैं और उन्हें पीट-पाट कर रास्ते पर लाते हैं।

इन्दु भी साँस रोक कर दौड़ा जा रहा है। वह कभी कभी ऊपर आँख उठा कर आकाश की ओर देखता है, फिर प्राणपण से भागने की चेष्टा करता है। मैदान समाप्त हुआ; इन्दु नदी के निकट आ पहुँचा। सामने ही पार होने का घाट है। चैत्र-वैशाख में इसी नदी को लोग यों ही पार कर जाते थे; पर आज वर्षा काल में मानों अपने अपमान का प्रतिशोध लेने की उत्तेजना में उसने भयानक मूर्ति धारण कर ली है। इन्दु ने देखा पार करने वाली नौका अभी इसी पार है और उसमें तीन आदमी बैठे हैं। दो तीन खेत दूर से ही इन्दु चिल्लाने लगा—"अरे, हमको भी लेते चलो"। पर शायद वायु के झोंकों के कारण नाव वालों ने नहीं सुना, या सुन कर भी नाव न रोकी और घाट पर से खोल दी। बालक प्राणपण से दौड़ने लगा, पर जिस समय वह घाट पर पहुँचा, नौका चौथाई नदी तय कर चुकी थी। इन्दु फिर पुकारने लगा। नौका में दो जवान और एक बूढ़ा था। युवक लोग नाव खे रहे थे। बालक का करुणा-व्यञ्जक स्वर सुना कर बूढ़ा कहने लगा—"अरे! नौका फेरो, लड़के को भी लेते

चलो। वह वही फतेहपुर के मित्र घराने का लड़का है। रोज़ घर से गोविन्दबेड़ पढ़ने जाता है। आज के दिन शायद नौका इस पार न आवेगी, लड़का बेचारा यहीं पड़ा रह जायगा। उसके घर के लोग क्या सोचेंगे" ? पीछे जो आदमी पतवार थामे था उसने कहा—"रहने दो अपने लड़के को। आधी दूर आ गये हैं, अब क्या हम फिर लौट कर जायँगे" ? सामने जो आदमी डाँड़ चला रहा था उसने भी उसी की हाँ में हाँ मिलाई। फिर बूढ़े की बात कौन सुनता ! इन्दु इसी पार रह गया। बूढ़े ने फिर भी एक बार कहा—"ओह ! बेचारा लड़का इस समय कहाँ जायगा" ?

हाय रे ! स्वार्थ-पर मनुष्य, लड़के को ले जाने में देर ही कितनी लगती ! तेरा तो उतने समय से कुछ भी काम न निकलेगा, पर बेचारा लड़का पड़ा रह गया। संसार में इस प्रकार मनुष्य बहुत हैं। रेलगाड़ी और पार उतारने वाली नौकाओं पर इस प्रकार की स्वार्थ-परता अधिकतर स्पष्ट भाव में दृष्टिगत होती है। गाड़ी में जगह ख़ाली पड़ी है, अथवा जो कुछ भी जगह बाक़ी है उसमें कई आदमियों की गुञ्जायश हो सकती है, फिर भी स्वार्थी मनुष्य दूसरे मुसाफ़िरों को केवल इसी स्वार्थ से नहीं बैठने देते कि उनके लिये पैर फैला कर बैठने की जगह न रहेगी। कभी कभी उनकी अपेक्षा उस मुसाफ़िर को जाने के लिये आवश्यक काम रहता है। पर इसकी परवा कौन करता है ?

इन्दु थोड़ी देर तक घाट पर खड़ा रहा। लक्षण देख कर उसने समझ लिया कि आज इस पार नौका आने की संभावना नहीं। एक बार उसने यह भी सोचा कि तैर जाऊँ। किन्तु जल

का वेग देख कर उसे साहस न हुआ। वह तैरने में उतना प्रवीण नहीं; फिर सिवा पीछे लौटने के अन्य उपाय ही क्या था? लाचार इन्दु पीछे ही की ओर लौटा। दो एक पग जाकर वह फिर उतारवाले घाट की ओर देखता—कि शायद कोई आ ही जाय। किन्तु मनुष्य क्या, और भी दूसरा कोई प्राणी नहीं देख पड़ता। इस ओर आकाश मेघों से घिर गया, वायु वेग से बहने लगी, इन्दु ने समझ लिया कि अब अवश्य ही वृष्टि होगी। अन्दाज़न एक मील तक बचने के लिए कोई घर न मिलेगा—यह सोच कर वह फिर दौड़ने लगा। थोड़ी ही दूर गया होगा कि पानी बरसने लगा। मैदान में एक बड़ा वृक्ष देख कर बालक उसी के नीचे जा खड़ा हुआ। चादर की कई तहें करके पुस्तकें लपेट लीं और नंगे बदन तथा नंगे सिर उसी वृक्ष के तने के निकट खड़ा रहा। पहले तो वृष्टि के दो चार छींटे उस पर न पड़े, परन्तु जिस समय पानी अधिक बरस ने लगा और वृक्ष के सब पत्ते भीग गये, उस समय बड़ी बड़ी बूँदे बालक की देह और सिर पर पड़ने लगीं। उसकी निगाह चादर की तह में लपेटी हुई किताबों पर थी कि कहीं वे भीग न जायँ। अपनी देह का उसे तनिक भी ध्यान नहीं। किन्तु मनुष्य कितनी देर तक अपने सिर पर अविराम मूसलाधार वर्षा की चपेटें सहन कर सकता है? थोड़ी देर में बालक को सरदी सताने लगी। इस ओर संध्या हो आई। अन्धकार धीरे धीरे बढ़ रहा है। हा! हा करती हुई हवा झकोरें दे रही है। बीच बीच में बिजली चमकती और कड़ कड़ शब्द करता हुआ मेघ गर्जने लगता है इन्दु की नस नस में मानों आतङ्क की बिजली दौड़ रही है।

थोड़ी ही दूर जाने पर एक मुसल्मान का मकान है, यही सोच-समझ कर इन्दु ने चादर को धोती की छाँह में दबाया और नंगे बदन वृष्टि सहता हुआ फिर दौड़ा और एक घोसी के दरवाज़े पर आश्रय लिया। वहाँ पर किताबें अलग रक्खीं और देह पोंछ कर वही चादर ओढ़ ली। अब वह इस बात की प्रतीक्षा करने लगा कि जैसे ही वृष्टि बन्द हो किसी दूसरे घर में जाकर आश्रय की भिक्षा माँगूँ।

इन्दु ने देखा कि इसी विकट वृष्टि के समय एक मुर्ग़ी अपने बच्चों को अपने पंखों से ढक रही है। जो बच्चे बाहर हो जाते हैं उन्हें वह फिर ढकने लगती है। बालक ने देख कर मन ही मन कहा—"हाय ? सन्तान के ऊपर माता की कितनी ममता और कितना मोह होता है !! बेचारी मुर्ग़ी अपने पंखों से अपने सब बच्चों को नहीं ढक सकती फिर भी वह उन्हें भीगने से बचाने की चेष्टा करती है। परन्तु हमारी चाची तो माँ से भी बढ़कर है, जान पड़ता है कि माँ के रहने पर भी हमारे लिये इतना यत्न न होता। कुछ भी नहीं है, फिर भी उस खँडहर में कितने कष्ट सह कर हमारी चाची हमको लिये पड़ी हैं। चाची ! तुम्हारा ऋण हम जन्म-जन्मान्तर में भी न चुका सकेंगे। तुम न होतीं तो हम कहाँ जाते ? आज इस समय तुम हमारे लिये बहुत कुछ सोच रही होगी और तुम्हारे नेत्रों से भी ऐसी ही वृष्टि हो रही होगी"—यही सोचते सोचते इन्दु ने देखा कि मैदान की ओर से एक आदमी ताड़ के पत्तों का एक झाबा शिर पर रक्खे एक गाय के साथ गाँव की ओर आ रहा है। वह कहता है—"साला ढोर अगर चरवाह के साथ गया होता तो

मुझे यह कष्ट न भोगना पड़ता, यह विकट-वृष्टि अब सिर पर नहीं सही जा सकती" । इन्दु ने अपने मन में तत्क्षण ही सोचा—"हाय रे ! संसार में एक पशु के खोजने के लिये भी मनुष्य हैं। किन्तु मेरी खोज के लिए कोई भी नहीं। हाय रे! रघु दादा! अगर आज तुम होते तो निश्चय मेरी खोज के लिये बाहर निकलते। मुझसे तुम कितनी प्रीति करते थे! तुम्हारे जीते रहने से मेरा और मेरी चाची का बहुत कुछ उपकार होता, क्या इसीलिये लोगों ने तुम्हें मार डाला ?"

बालक अब मन के वेग को न रोक सका और रोने लगा।

ज्ञानदा ! यही तुम्हारा पुरस्कार है। तेरह बरस के लड़के की निश्छल कृतज्ञता इस संसार में कितने जन अर्जित कर सकते हैं?

रघु ! तुम्हारे मरने के पीछे, विकट मारों से बना यही तुम्हारा स्मृति-चिह्न है; अथवा पत्थर की गढ़ी हुई मूर्ति इसकी अपेक्षा सौगुनी निकृष्ट है। किसी परिचित व्यक्ति के मर जाने पर सभा-स्थल में इकट्ठे होकर सैकड़ों मनुष्य कण्ठस्थ वक्तृता के द्वारा मृत-व्यक्ति की जो प्रशंसा करते हैं उसकी अपेक्षा इस सरल बालक की, अपने ही हृदय की प्रेरणा से कही हुई, एक बात भी कहीं अधिक मूल्य की है। छिद्रान्वेषी शत्रु गण भी जिसके जीवन में एक भी अन्याय का कार्य्य न दिखा सके, उसके किये हुए उपकारों की स्मृति में यदि एक मनुष्य भी आँखों से आँसू बहावे, तो उसकी अपेक्षा और किसका जीवन श्लाघ्यतर हो सकता है ? कैवर्त-कुल के कलङ्क रघु। तुम्हारा जीवन धन्य था ! धन के लालच में तुम्हारे मन ने पलटा नहीं खाया; दुर्वृत्त दुष्टों की धमकी से तुम्हारा साहस नहीं डिगा; तुम एक दिन भी अपना कर्तव्य नहीं भूले।

तुमने यही प्रतिज्ञा की थी कि जीते जी उपकारी का उपकार कभी न भूलेंगे, इसीसे हत्यारों ने तुम्हारे प्राण लिये। हे हल चलानेवाले कैवर्त ! परम पिता के पर-राज्य में वेद-पारगामी ब्राह्मणों का सा सम्मान तुम्हें मिलने में किसी को क्या सन्देह हो सकता है ?

(कात्यायनीदत्त त्रिवेदी)

विषय-सूची

भूमिका।

हर्ष का विषय है कि पञ्जाब ऐसे उर्दू-प्रधान प्रान्त में हिन्दी की ओर भी लोगों का ध्यान आकर्षित हुआ है। पञ्जाब में हिन्दी की अब वह दुरवस्था नहीं है जो कुछ वर्ष पहले थी। अब तो यहाँ भी दिन प्रतिदिन हिन्दी का क्षेत्र-विस्तार होरहा है। पञ्जाब यूनिवर्सिटी ने जब से हिन्दी भाषा को कालेज के विद्यार्थियों के लिये ऐच्छिक विषयों में स्थान दिया है, तबसे इसके पठन-पाठन को और भी उत्तेजना मिली है; परन्तु अभी तक इंटरमीडियट क्लासके विद्यार्थियों के लिये कोर्स में कोई ऐसी पुस्तक नहीं रक्खी गई थी जिसमें हिन्दी के आदर्श और प्रतिष्ठित लेखकों के लेख नमूनार्थ संगृहीत हों। इसी अभाव की पूर्त्ति के लिये यह संग्रह-पुस्तक प्रकाशित की गई है। आशा है इस पुस्तक के पढ़ने से विद्यार्थियों को रचना-नैपुण्य प्राप्त करने तथा हिन्दी भाषा-विषयक योग्यता बढ़ाने में पर्याप्त सहायता मिलेगी। इस पुस्तक में जिन २ विद्वान् लेखकों के लेख संग्रह किये हैं, विद्यार्थियों की जानकारी के लिये उनका संक्षिप्त परिचय भी नीचे दिया जाता है—

पण्डित अयोध्यासिंहजी उपाध्याय—इनका जन्म सँव्वत् १९२२ में कस्बा निज़ामाबाद, ज़िला आज़मगढ़ में हुआ था। ये सनाढ्य ब्राह्मण हैं। हिन्दी के वर्त्तमान कवियों में इनका स्थान बहुत ही ऊँचा है। ये एक बहुत सिद्धहस्त और प्रौढ़ लेखक व कवि हैं। भाषा पर तो आपकी निःसीम सत्ता है। कठिन से कठिन और सरल से सरल भाषा लिखने के लिये ये प्रसिद्ध हैं। इनकी कविताएँ लगभग हिन्दी की सभी उच्च-कोटि की पत्र-पत्रिकाओं में निकलती रहती हैं, जो हिन्दी संसार में बड़े आदर की दृष्टि से देखी जाती हैं। इनके लिखे हुए गद्य-पद्य की पचीसों

पुस्तकें हैं, परन्तु 'प्रियप्रवास' 'ठेठ हिन्दी का ठाठ' 'अधखिला फूल' 'बाल विलास' 'पद्यप्रमोद' इत्यादि बहुत ही प्रसिद्ध हैं। लगभग ये सभी पुस्तकें विद्यार्थियों के पढ़ने योग्य हैं।

पण्डित महावीर प्रसाद द्विवेदी—इनका जन्म ज़िला राय-बरेली के दौलतपुर गाँव में वैशाख शुक्ल ४, सँम्वत् १९२१ में हुआ था। द्विवेदी जी हिन्दी भाषा के आचार्य माने जाते हैं। पहले ये झाँसी में टेलीग्राफ इंस्पेक्टर थे, परन्तु इस काम में उनका जी न लगता था और अन्त में विवश होकर उनको त्याग-पत्र देना पड़ा।

द्विवेदी जी बड़े परिश्रमी हैं और अपने परिश्रमसे ही इन्होंने इतनी विद्वत्ता प्राप्त की है। ये अंग्रेज़ी, फ़ारसी, उर्दू, संस्कृत, मराठी, बँगला और गुजराती आदि भाषाओं के अच्छे जानकार हैं। हिन्दी की सुप्रसिद्ध पत्रिका 'सरस्वती' बहुत दिनों तक आप के सम्पादकत्व में निकलती रही और उसकी उन्नति का श्रेय इन्हीं को है। आपकी अनुवादित और लिखित खास खास पुस्तकों के नाम ये हैं—

हिन्दी महाभारत, रघुवंश, कुमारसम्भव, किरातार्जुनीय, मेघदूत, नाट्य-शास्त्र, कालिदास की निरकुंशता, सम्पत्ति-शास्त्र, जलचिकित्सा, शिक्षा, स्वाधीनता, बेकन-विचार-रत्नावली, नैषध-चरित-चर्चा, हिन्दी भाषा की उत्पत्ति, कालिदास, रसज्ञरञ्जन, अद्भुत आलाप इत्यादि। इनमें हिन्दी महाभारत, सम्पत्ति-शास्त्र शिक्षा, हिन्दी भाषा की उत्पत्ति और अद्भुत आलाप, विद्यार्थियों के पढ़ने योग्य हैं।

श्रीयुत प्रेमचन्द—मुंशी प्रेमचन्दजी आजकल हिन्दी के सर्व-श्रेष्ठ गल्प-लेखक और औपन्यासिक हैं। इनके उपन्यासोंने

हिन्दी संसार में युगान्तर उपस्थित कर दिया है। इनकी भाषा बहुत ही लच्छेदार और मुहावरेदार होती है। पहले यह उर्दू में हीलिखते थे।

प्रेमचन्दजी का स्वभाव बहुत ही विनम्र और मिलनसार है। हिन्दी संसार को प्रेमचन्दजी पर समुचित गर्व है। छोटी २ कहानियों के अलावा अब तक आप सेवासदन, प्रेमाश्रम, रङ्ग-भूमि और कायाकल्प नामक उच्च कोटि के उपन्यास लिख चुके हैं। 'करबला' नामक आपका एक नाटक भी प्रकाशित होचुका है। नवनिधि, प्रेमपचीसी, प्रेम द्वादशी और सप्त-सरोज आदि कई कहानियों के संग्रह भी निकले हैं। इनके लगभग सभी उपन्यास विद्यार्थियों के पढ़ने योग्य हैं।

इनके अलावा और जिन २ पुस्तकों में और माधुरी व सरस्वती आदि मासिक पत्रिकाओं से हमें लेख संग्रह करने में सहायता मिली है उनके लेखकों और सम्पादकों के हम विशेष रूप से आभारी हैं और उनको हार्दिक धन्यवाद देते हैं।

अन्तमें हम श्रीमान् प्रिंसिपल रघुवरदयालजी शास्त्री, एम.ए., एम. ओ. एल. सनातनधर्म्म कालेज लाहौर के भी बड़े कृतज्ञ हैं कि अवकाश न रहते हुए भी उन्होंने अपना कितना ही अमूल्य समय देकर इस पुस्तक को अवलोकन करने की कृपा की, और बहुमूल्य सम्मति से इस को छात्रों के लिये अधिक उपयोगी बनाने में बड़ी सहायता दी है।

लाहौर
८-१०-१९२६.

संकलयिता